नवरसरुचिरां निर्मितिमादधती भारती कवेर्जयति!

अंक-2

निमित्त

विश्वविद्यालय परिसर की रचनात्मक अभिव्यक्ति का समवेत प्रयास

त्रैमासिक ई-पत्रिका

निमित्त मात्रं भव!

ज्ञान शांति मैत्री

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय

नैक द्वारा 'A' ग्रेड प्राप्त

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

पोस्ट - हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)

website : www.hindivishwa.org

संरक्षक

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

परामर्श

प्रो. चित्तरंजन मिश्र
प्रतिकुलपति
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा-442001 (महाराष्ट्र)

संयोजन-संपादन

डॉ. शंभू जोशी
सहायक प्रोफेसर

श्री गिरीश चंद्र पाण्डेय
प्रभारी, लीला
रचना भेजने का पता - nimitta@hindivishwa.org

आवरण एवं साज-सज्जा

श्री उमा शंकर
सहायक, स्थापना एवं प्रशासन विभाग

© संबंधित लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा सुरक्षित

प्रकाशक

कुलसचिव
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय
पोस्ट- हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा- 442001 (महाराष्ट्र)
नोट- प्रकाशित रचनाओं की रीति-नीति या विचारों से महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा या संयोजक-संपादकों की सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुक्रम

विरासत	
कहानी	
दहलीज	निर्मल वर्मा
कविताएं	
कुर्सीनामा	गोरख पाण्डेय
वतन का गीत	
अतिथि	
विकास का वैकल्पिक मॉडल	सच्चिदानंद सिन्हा
आलेख	
सभ्यता का विकल्प : गांधी दृष्टि	चित्तरंजन मिश्र
संस्कृत क्यों?	बलराम शुक्ल
लालित्य	
बादलों को उतरने के लिए थोड़ी जगह दें	अरुणेश नीरन
कहानी	
बाकी धुआँ रहने दिया	राकेश मिश्र
सफलता	
सफल जीवन के सोपान	गिरीश्वर मिश्र
स्मरणशक्ति को कैसे बढ़ाएँ ?	शोभा पालीवाल
कविताएँ	
दो कविताएँ	रामानुज अस्थाना
हत्या	डी. एन प्रसाद
तुमि के तुमि जानो ना...	सपना सिंह
चंद अशआर	जुगल चौधरी
पाषाण पथिक	अविनाश त्रिपाठी 'अंकुर'
महिला सशक्तिकरण	रजनीश कुमार अम्बेडकर
नहीं करना चाहता हूँ संवाद	प्रदीप त्रिपाठी
मेरी कविता की लड़की	हरप्रीत कौर
माँ : कुछ शब्द चित्र	राकेश श्रीमाल
भूले बिसरे गीत	
भोजपुरी के भूलते बिसरते बाल खेल-गीत	माधुरी मिश्र
व्यंग्य	
कलिकाल का विद्वत समाज	मनोज कुमार राय
बकरे चहक उठे	अभिषेक त्रिपाठी

विरासत

दहलीज

निर्मल वर्मा

पिछली रात रूनी को लगा कि इतने बरसों बाद कोई पुराना सपना धीमे कदमों से उसके पास चला आया है। वही बंगला था, अलग कोने में पत्तियों से घिरा हुआ....धीरे धीरे फाटक के भीतर घुसी है...मौन की अथाह गहराई में लान डूबा है....शुरु मार्च की वसंती हवा घास को सिहरा-सहला जाती है...बहुत बरसों के एक रिकार्ड की धुन छतरी के नीचे से आ रही है...ताश के पत्ते घास पर बिखरे हैं....लगता है शम्मी भाई अभी खिलखिला कर हंस देंगे और आपा(बरसों पहले जिनका नाम जेली था) बंगले के पिछवाड़े क्यारियों को खोदते हुये पूंछेंगी- रूनी जरा मेरे हांथों को तो देख, कितने लाल हो गये हैं!

इतने बरसों बाद रूनी को लगा कि वह बंगले के सामने खड़ी है और सब कुछ वैसा ही है, जैसा कभी बरसों पहले, मार्च के एक दिन की तरह था...कुछ भी नहीं बदला, वही बंगला है, मार्च की खुश्क, गरम हवा सांय-सांय करती चली आ रही है, सूनी सी दोपहर को परदे के रिंग धीमे-धीमे खनखना जाते हैं-और वह घास पर लेटी है-बस, अब अगर मैं मर जाऊं, उसने उस घड़ी सोचा था।

लेकिन वह दोपहर ऐसी न थी कि केवल चाहने भर से कोई मर जाता। लान के कोने में तीन पेड़ों का झुरमुट था, ऊपर की फुनगियां एक दूसरे से बार-बार उलझ जाती थीं। हवा चलने से उनके बीच के आकाश की नीली फांक कभी मुंद जाती थी कभी खुल जाती थी। बंगले की छत पर लगे एरियल पोल के तार को देखो, (देखो तो घास पर लेटकर अधमुंदी आंखों से रूनी ऐसे ही देखती है) तो लगता है, कैसे वह हिल रहा है हौले-हौले -अनझिप आंख से देखो (पलक बिल्कुल न मूंदो, चांहे आंखों में आंसू भर जायें तो भी- रूनी ऐसे ही देखती है।) तो लगता है जैसे तार बीच में से कटता जा रहा है और दो कटे हुये तारों के बीच आकाश की नीली फांक आंसू की सतह पर हल्के-हल्के तैरने लगती है....

हर शनिवार की प्रतीक्षा हफ्ते भर की जाती है।...वह जेली को अपने स्टाम्प एल्बम के पन्ने खोल कर दिखलाती है और जेली अपनी किताब से आंखे उठाकर पूंछती है-अर्जेन्टाइना कहां है? सुमात्रा कहां है?...वह जेली के प्रश्नों के पीछे छिपे फैली हुई असीम दूरियों के धूमिल छोर पर आ खड़ी होती है।...हर रोज़ नये-नये देशों के टिकटों से एल्बम के पन्ने भरते जाते हैं, और जब शनिवार की दोपहर को शम्मी भाई होटल से आते हैं, तो जेली कुर्सी से उठ खड़ी होती है, उसकी आंखों में एक घुली-घुली सी ज्योति निखर जाती है और वह रूनी के कंधे झकझोर कर कहती है- जा, जरा भीतर से ग्रामोफोन तो ले आ।

रुनी क्षण भर रुकती है, वह जाये या वहीं खड़ी रहे? जेली उसकी बड़ी बहन है,उसके और जेली के बीच बहुत से वर्षों का सूना और लम्बा फासला है। उस फासले के दूसरे छोर पर जेली है, शम्मी भाई हैं, वह इन दोनों में से किसी को छू नहीं सकती। वे दोनों उससे अलग जीते हैं।...ग्रामोफोन महज एक बहाना है, उसे भेजकर जेली शम्मी भाई के संग अकेली रह जायेगी और तब....रूनी घास पर अकेली भाग रही है बंगले की तरफ...पीली रोशनी में भीगी घास के तिनको पर रेंगती हरी, गुलाबी धूप और दिल की धड़कन, हवा दूर के मटियाले पंख वाले एरियल पोल को सहला जाती हैं सर्र सर्र, और गिरती हुई लहरों की तरह झाड़ियां झुक जाती हैं। आंखों से फिसलकर वह बूंद पलकों की छाह में कांपती है, जैसे वह दिल की धड़कन है, जो पानी में उतर आई है।

शम्मी भाई जब होटल से आते हैं, तो वे सब उस शाम लान के बीचोंबीच कैनवास की पैराशूटनुमा छतरी के नीचे बैठते हैं। ग्रामोफोन पुराने जमाने का है। शम्मी भाई हर रिकार्ड के बाद चाभी देते हैं, जेली सुई बदलती है और वह, रूनी चुपचाप चाय पीती है। जब कभी हवा का कोई तेज झोंका आता है, तो छतरी धीरे-धीरे डोलने लगती है, उसकी छाया चाय के बर्तनों, टिकोज़ी और जेली के सुनहरे बालों को हल्के से बुहार जाती है और रूनी को लगता है कि किसी दिन हवा का इतना जबर्दस्त झोंका आयेगा कि छतरी धड़ाम से नीचे आ गिरेगी और वे तीनों उसके नीचे दब मरेंगे।

शम्मी भाई जब अपने होस्टल की बातें बताते हैं, तो वह और जेली विस्मय और कौतुहल से टुकुर-टुकुर उनके हिलते हुये होंठों को निहारती हैं। रिश्ते में शम्मी भाई चाहें उनके कोई न लगते हों लेकिन उनसे जान पहचान इतनी पुरानी है कि अपने पराये का अंतर कभी उनके बीच याद आया हो, याद नहीं पड़ता। होस्टल में जाने से पहले जब वह इस शहर में आये थे, तो अब्बा के कहने पर कुछ दिन उनके ही घर रहे थे। जब कभी वह शनिवार को उनके घर

आते हैं, तो अपने संग जेली के लिये यूनिवर्सिटी की लायब्रेरी से अंग्रेजी उपन्यास और अपने दोस्तों से मांगकर कुछ रिकार्ड लाना नहीं भूलते।

आज इतने बरसों बाद भी जब उसे शम्मी भाई के दिये हुये अजीब-अजीब नाम याद आते हैं, तो हंसी आये बिना नहीं रहती। उनकी नौकरानी मेहरू के नाम को चार चांद लगाकर शम्मी भाई ने कब सदियों पहले की सुकुमार राजकुमारी मेहरुन्निसा बना दिया, कोई नहीं जानता। वह रेहाना से रूनी बन गई आपा पहले बेबी बनी, उसके बाद जेली आइसक्रीम और अखिर में बेचारी सिर्फ जेली बनकर रह गई। शम्मी भाई के नाम इतने बरसों बाद भी, लान की घास और बंगले की दीवारों से लिपटी बेल-लताओं की तरह, चिरन्तन और अमर है।

ग्रामोफोन के घूमते हुये तवे पर फूल पत्तियां उग आती हैं, एक आवाज़ उन्हें अपने नरम, नंगे हांथों से पकड़कर हवा में बिखेर देती है, संगीत के सुर झाडियों में हवा से खेलते हैं, घास के नीचे सोई हुई भूरी मिट्टी पर तितली का नन्हा सा दिल धड़्कता है...मिट्टी और घास के बीच हवा का घोंसला कांपता है... और ताश के पत्तों पर जेली और शम्मी भाई के सिर झुकते हैं, उठते हैं, मानो वे चार आंखों से घिरी झील में एक दूसरे की छायायें देख रहे हों।

और शम्मी भाई जो बात कहते हैं, उस पर विश्वास करना न करना कोई माने नहीं रखता। उनके सामने जैसे सब कुछ खो जाता है...और कुछ ऐसी चीज़ें हैं जो मानो चुप रहती हैं और जिन्हें जब रूनी रात को सोने से पहले सोचती है, तो लगता है कहीं गहरा, धुंधला सा गड्ढा है, जिसके भीतर वह फिसलते-फिसलते बच जाती है, और नहीं गिरती तो मोह रह जाता है न गिरने का... और जेली पर रोना आता है, गुस्सा आता है। जेली में क्या कुछ है, जो शम्मी भाई जो उसमें देखते हैं , वह रूनी में नहीं देखते? और जब शम्मी भाई जेली के सांग रिकार्ड बजाते हैं, ताश खेलते हैं, (मेज के नीचे अपना पांव उसके पांव पर रख देते हैं) तो वह अपने कमरे की खिड़की के परदे के परे चुपचाप उन्हें देखती रहती है, जहां एक अजीब सी मायावी रहस्यमयता में डूबा, झिलमिल सा सपना है और परदे को खोलकर पीछे देखना, यह क्या कभी नहीं हो पायेगा?

मेरा भी एक रहस्य है जो ये नहीं जानते, कोई नहीं जानता। रूनी ने आंखे मूंदकर सोचा, मैं चाहूं तो कभी भी मर सकती हूं, इन तीन पेड़ों के झुरमुट के पीछे, ठन्डी गीली घास पर, जहां से हवा में डोलता हुआ एरियल पोल दिखाई देता है।

हवा में उड़ती हुई शम्मी भाई की टाई...उनका हांथ, जिसकी हर उंगली के नीचे कोमल सफेद खाल पर लाल-लाल से गड्ढे उभर आये थे, छोटे-छोटे चांद से गड्ढे, जिन्हें अगर छुओ, मुट्ठी में भींचो, हल्के-हल्के से सहलाओ, तो कैसा लगेगा? सच कैसा लगेगा? किन्तु शम्मी भाई को नहीं मालूम कि वह उनके हांथों को देख रही है, हवा में उड़ती हुई उनकी टाई, उनकी झिपझिपाती आंखों को देख रही है।

ऐसा क्यों लगता है कि एक अपरिचित डर की खट्टी-खट्टी सी खुशबू अपने में धीरे-धीरे घेर रही है, उसके शरीर के एक एक अंग की गांठ खुलती जा रही है, मन रुक जाता है और लगता है कि वह लान से बाहर निकलकर धरती के अंतिम छोर तक आ गई है और उसके परे केवल दिल की धड़कन है, जिसे सुनकर उसका सिर चकराने लगता है (क्या उसके संग ही ये सब होता है या जेली के संग भी)।

-तुम्हारी ऐल्बम कहां है?- शम्मी भाई धीरे से उसके सामने आकर खड़े हो गये। उसने घबराकर शम्मी भाई की ओर देखा। वह मुस्कुरा रहे थे।

जानती हो इसमें क्या है?- शम्मी भाई ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। रूनी का दिल धौकनी की तरह धड़कने लगा। शायद शम्मी भाई वही बात कहने वाले हैं, जिसे वह अकेले में, रात को सोने से पहले कई बार मन-ही-मन सोच चुकी है। शायद इस लिफाफे के भीतर एक पत्र है, जो शम्मी भाई ने उसके लिये ,केवल उसके लिये लिखा है। उसकी गर्दन के नीचे फ्राक के भीतर से ऊपर उठती हुई कच्ची सी गोलाइयों में मीठी-मीठी सी सुईयां चुभ रही हैं, मानो शम्मी भाई की आवाज़ ने उसकी नंगी पसलियों को हौले से उमेठ दिया हो। उसे लगा, चाय की केतली की टीकोज़ी पर लाल-नीली मछलियां काढी गई हैं, वे अभी उछलकर हवा में तैरने लगेंगी और शम्मी भाई सब कुछ समझ जायेंगे-उनसे कुछ भी छिपा न रहेगा।

शम्मी भाई ने नीला लिफाफा मेज पर रख दिया और उसमें से टिकट निकालकर मेज पर बिखेर दिये।

ये तुम्हारी एल्बम के लिये हैं....

वह एकाएक कुछ समझ नहीं सकी। उसे लगा, जैसे उसके गले में कुछ फंस गया है और उसकी पहली और दूसरी सांस के बीच एक गहरी अंधेरी खाई खुलती जा रही है....

जेली, जो माली के फावड़े से क्यारी खोदने में जुटी थी, उनके पास आकर खड़ी हो गई और अपनी हथेली हवा में फैलाकर बोली-देख रूनी, मेरे हाथ कितने लाल हो गये हैं!

रूनी ने अपना मुंह फेर लिया।...वह रोयेगी, बिल्कुल रोयेगी, चाहे जो कुछ हो जाय...

चाय खत्म हो गई थी। मेहरुन्निसा ताश और ग्रामोफोन भीतर ले गई और जाते-जाते कह गई कि अब्बा उन सबको भीतर आने के लिये कह रहे हैं। किन्तु रात होने में अभी देर थी, और शनिवार को इतनी जल्दी भीतर जाने के लिये किसी को कोई उत्साह नहीं था। शम्मी भाई ने सुझाव दिया कि वे कुछ देर के लिये वाटर रिजर्वायर तक घूमने चलें। उस प्रस्ताव पर किसी ने कोई अपत्ति नहीं की। और वे कुछ ही मिनटों में बंगले की सीमा पार करके मैदान की ऊबड़ खाबड़ जमीन पर चलने लगे।

चारों ओर दूर-दूर तक भूरी सूखी मिट्टी के ऊंचे-नीचे टीलों और ढूहों के बीच बेरों की झाड़ियां थीं, छोटी-छोटी चट्टानों के बीच सूखी धारा उग आई थी, सड़ते हुये सीले हुये पत्तों से एक अजीब, नशीली सी, बोझिल कसैली गंध आ रही थी, धूप की मैली तहों पर बिखरी-बिखरी सी हवा थी।

शम्मी भाई सहसा चलते-चलते ठिठक गये।

-रुनी कहां है?

-अभी हमारे आगे आगे चल रही थी-जेली ने कहा। उसकी सांस ऊपर चढती है और बीच में ही टूट जाती है। दोनों की आंखें मैदान के चारों ओर घूमती हैं... मिट्टी के ढूहों पर पीली धूल उड़ती है।...लेकिन रूनी वहां नहीं है, बेर की सूखी, मटियाली झाड़ियां हवा में सरसराती हैं, लेकिन रूनी वहां नहीं है। ...पीछे मुड़कर देखो, तो पगडन्डियों के पीछे पेड़ों के झुरमुट में बंगला छिप गया है, लान की छतरी छिप गई है...केवल उनके शिखरों के पत्ते दिखाई देते है, और दूर ऊपर फुनगियों का हरापन सफेद चांदी में पिघलने लगा है। धूप की सफेदी पत्तों से चांदी की बूंदों सी टपक रही है।

वे दोनों चुप हैं...शम्मी भाई पेड़ की टहनी से पत्थरों के इर्द गिर्द टेढी-मेढी रेखायें खींच रहे हैं। जेली एक बड़े से चौकोर पत्थर पर रुमाल बिछाकर बैठ गई है। दूर मैदान के किसी छोर से स्टोन कटर मशीन का घरघराता स्वर सफेद हवा में तिरता आता है, मुलायम रुई में ढकी हुई आवाज की तरह, जिसके नुकीले कोने झर गये हैं।

-तुम्हें यहां आना बुरा तो नहीं लगता?-शम्मी भाई ने धरती पर सिर झुकाये धीमे स्वर में पूंछा।

-तुम झूठ बोले थे। - जेली ने कहा।

-कैसा झूठ, जेली?

-तुमने बेचारी रूनी को बहकाया था, अब वह न जाने कहां हमें ढूंढ रही होगी।

-वह वाटर-रिजर्वायर की ओर गई होगी, कुछ ही देर में वापस आ जायेगी। -शम्मी भाई उसकी ओर पीठ मोड़े टहनी से धरती पर कुछ लिख रहे हैं।

जेली की आंखों पर छोटा सा बादल उमड़ आया है-क्या आज शाम कुछ नहीं होगा, क्या जिन्दगी में कभी कुछ नहीं होगा? उसका दिल रबर के छल्ले की मानिंद खिचता जा रहा है।

-शम्मी!...तुम यहां मेरे संग क्यों आये? - और वह बीच में ही रुक गई। उसकी पलकों पर रह रह कर एक नरम सी आहट होती है और वे मुंद जाती हैं, उंगलियां स्वयं-चालित सी मुट्ठी में भिंच जाती हैं, फिर अवश सी आप ही अप खुल जाती हैं।

-जेली, सुनो...

शम्मी भाई जिस टहनी से जमीन को कुरेद रहे थे, वह टहनी कांप रही थी। शम्मी भाई के इन दो शब्दों के बीच कितने पत्थर हैं, बरसों, सदियों के पुराने, खामोश पत्थर, कितनी उदास हवा है और मार्च की धूप है, जो बरसों बाद इस शाम को उनके पास आई है और फिर कभी नहीं लौटेगी। ..शम्मी भाई...! प्लीज़!..प्लीज़!..जो कुछ कहना है, अभी कह डालो, इसी क्षण कह डालो! क्या आज शाम कुछ नहीं होगा, क्या ज़िन्दगी में कभी कुछ नहीं होगा?

वे बंगले की तरफ चलने लगे- ऊबड़ खाबड़ धरती पर उनकी खामोश छायायें ढलती हुई धूप में सिलटने लगीं।...ठहरो! बेर की झाड़ियों के पीछे छिपी हुई रूनी के होठ फड़क उठे, ठहरो, एक क्षण! लाल भुरभुरे पत्तों की ओट में भूला हुआ सपना झांकता है, गुनगुनी सी सफेद हवा, मार्च की पीली धूप, बहुत दिन पहले सुने रिकार्ड की जानी-पहचानी ट्यून, जो चारों ओर फैली घास के

तिनकों पर बिछल गई है...सब कुछ इन दो शब्दों पर थिर हो गया है, जिन्हें शम्मी भाई ने टहनी से धूल कुरेदते हुये धरती पर लिख दिया था, 'जेली...लव'

जेली ने उन शब्दों को नहीं देखा। इतने सालों के बाद आज भी जेली को नहीं मालूम कि उस शाम शम्मी भाई ने कांपती टहनी से जेली के पैरों के पास क्या लिख दिया था। आज इतने लम्बे अर्से बाद समय की धूल उन शब्दों पर जम गई है। ...शम्मी भाई, वह और जेली तीनों एक दूसरे से दूर दुनिया के अलग- अलग कोनों में चले गये हैं, किन्तु आज भी रूनी को लगता है कि मार्च की उस शाम की तरह वह बेर की झाडियों के पीछे छिपी खड़ी है, (शम्मी भाई समझे थे कि वह वाटर-रिजर्वायर की तरफ चली गई थी) किन्तु वह सारे समय झाड़ियों के पीछे सांस रोके , निस्पन्द आंखों से उन्हें देखती रही थी, उस पत्थर को देखती रही थी, जिस पर कुछ देर पहले शम्मी भाई और जेली बैठे रहे थे।...आंसुओं के पीछे सब कुछ धुंधला-धुंधला सा हो जाता है...शम्मी भाई का कांपता हांथ, जेली की अध मुंदी सी आंखें, क्या वह इन दोनों की दुनिया में कभी प्रवेश नहीं कर पायेगी?

कहीं सहमा सा जल है और उसकी छाया है, उसने अपने को देखा है, और आंखे मूंद ली हैं। उस शाम की धूप के परे एक हल्का सा दर्द है, आकाश के उस नीले टुकड़े की तरह, जो आंसू के एक कतरे में ढरक आया था। इस शाम से परे बरसों तक स्मृति का उद्भ्रान्त पाखी किसी सूनी पड़ी हुई उस धूल पर मंडराता रहेगा, जहां केवल इतना भर लिखा है..'जेली ..लव'

उस रात जब उनकी नौकरानी मेहरुन्निसा छोटी बीबी के कमरे में गई, तो स्तम्भित सी खड़ी रह गई। उसने रूनी को पहले कभी ऐसा न देखा था।

-छोटी बीबी, आज अभी से सो गईं? मेहरू ने बिस्तर के पास आकर कहा।

रूनी चुपचाप आंखे मूंदे लेटी है। मेहरू और पास खिसक गई है। धीरे से उसके माथे को सहलाया- छोटी बीबी क्या बात है? और तब रूनी ने अपनी पलकें उठा लीं, छत की ओर एक लम्बे क्षण तक देखती रही, उसके पीले चेहरे पर एक रेखा खिंच आई...मानो वह दहलीज हो, जिसके पीछे बचपन सदा के लिये छूट गया हो...

-मेहरू, बत्ती बुझा दे- उसने संयत, निर्विकार स्वर में कहा- देखती नहीं, मैं मर गई हूं!

आभार : http://www.hindikunj.com/2010/01/blog-post_13.html

परिचय

जन्म	:	3 अप्रैल 1929, शिमला (हिमाचल प्रदेश)
भाषा	:	हिंदी
विधाएँ	:	कहानी, उपन्यास, निबंध, नाटक, संस्मरण, यात्रा वृत्तांत

मुख्य कृतियाँ

कहानी संग्रह	:	परिंदे, कौवे और काला पानी, सूखा तथा अन्य कहानियाँ, बीच बहस में, जलती झाड़ी, पिछली गर्मियों में
उपन्यास	:	अंतिम अरण्य, रात का रिपोर्टर, एक चिथड़ा सुख, लाल टीन की छत, वे दिन
यात्रा वृत्तांत	:	धुंध से उठती धुन, चीड़ों पर चाँदनी, हर बारिश में
निबंध	:	भारत और यूरोप : प्रतिश्रुति के क्षेत्र, शताब्दी के ढलते वर्षों से, कला का जोखिम, शब्द और स्मृति, ढलान से उतरते हुए, इतिहास स्मृति आकांक्षा
नाटक	:	तीन एकांत
पत्र	:	प्रिय राम
अनुवाद	:	रोमियो जूलियट और अँधेरा, बाहर और परे, कारेल चापेक की कहानियाँ, बचपन, कुप्रिन की कहानियाँ, इतने बड़े धब्बे, झोंपड़ीवाले, आर यू आर, एमेके : एक गाथा
सम्मान	:	मूर्तिदेवी पुरस्कार, साहित्य अकादमी पुरस्कार, ज्ञानपीठ पुरस्कार, पद्म भूषण, राम मनोहर लोहिया अतिविशिष्ट सम्मान, साधना सम्मान
निधन	:	25 अक्तूबर 2005, दिल्ली

विरासत

कुर्सीनामा

गोरख पाण्डेय

1
जब तक वह जमीन पर था
कुर्सी बुरी थी
जा बैठा जब कुर्सी पर वह
जमीन बुरी हो गई

2
उसकी नजर कुर्सी पर लगी थी
कुर्सी लग गई थी
उसकी नजर को
उसको नजरबंद करती है कुर्सी
जो औरों को
नजरबंद करता है

3
महज ढाँचा नहीं है
लोहे या काठ का
कद है कुर्सी
कुर्सी के मुताबिक वह
बड़ा है छोटा है
स्वाधीन है या अधीन है
खुश है या गमगीन है
कुर्सी में जज्ब होता जाता है
एक अदद आदमी

4
फाइलें दबी रहती हैं
न्याय टाला जाता है
भूखों तक रोटी नहीं पहुँच पाती
नहीं मरीजों तक दवा
जिसने कोई जुर्म नहीं किया
उसे फाँसी दे दी जाती है
इस बीच
कुर्सी ही है
जो घूस और प्रजातंत्र का
हिसाब रखती है

5
कुर्सी खतरे में है तो प्रजातंत्र खतरे में है
कुर्सी खतरे में है तो देश खतरे में है
कुर्सी खतरे में है तो दुनिया खतरे में है
कुर्सी न बचे
तो भाड़ में जाए प्रजातंत्र
देश और दुनिया

6
खून के समंदर पर सिक्के रखे हैं
सिक्कों पर रखी है कुर्सी
कुर्सी पर रखा हुआ
तानाशाह
एक बार फिर
कत्ले-आम का आदेश देता है

7
अविचल रहती है कुर्सी
माँगों और शिकायतों के संसार में
आहों और आँसुओं के
संसार में अविचल रहती है कुर्सी
पायों में आग
लगने
तक

8
मदहोश लुढ़क कर गिरता है वह
नाली में आँख खुलती है
जब नशे की तरह
कुर्सी उतर जाती है

9
कुर्सी की महिमा
बखानने का
यह एक थोथा प्रयास है
चिपकनेवालों से पूछिए
कुर्सी भूगोल है
कुर्सी इतिहास है।

वतन का गीत

हमारे वतन की नई जिंदगी हो
नई जिंदगी इक मुकम्मिल खुशी हो
नया हो गुलिस्ताँ नई बुलबुलें हों
मुहब्बत की कोई नई रागिनी हो
न हो कोई राजा न हो रंक कोई
सभी हों बराबर सभी आदमी हों
न ही हथकड़ी कोई फसलों को डाले
हमारे दिलों की न सौदागरी हो
जुबानों पे पाबंदियाँ हों न कोई
निगाहों में अपनी नई रोशनी हो
न अश्कों से नम हो किसी का भी दामन
न ही कोई भी कायदा हिटलरी हो
सभी होंठ आजाद हों मयकदे में
कि गंगो-जमन जैसी दरियादिली हो
नए फैसले हों नई कोशिशें हों
नई मंजिलों की कशिश भी नई हो

साभार : हिंदीसमय डॉट कॉम

परिचय

जन्म : 1945, देवरिया (उत्तर प्रदेश)
भाषा : हिंदी
विधाएँ : कविता, वैचारिक लेख, नाटक

मुख्य कृतियाँ

कविता : भोजपुरी के नौ गीत, जागते रहो सोने वलो, स्वर्ग से बिदाई, समय का पहिया, लोहा गरम हो गया है
वैचारिक गद्य : धर्म की मार्क्सवादी व्याख्या
निधन : 29 जनवरी 1989

कविताएँ

- अधिनायक वंदना
- अमीरों का कोरस
- आँखें देख कर
- आशा का गीत
- इन्कलाब का गीत
- उनका डर
- एक झीना सा पर्दा था
- ऐलान
- कुर्सीनामा
- कला कला के लिए
- कानून
- गजल - 1
- गजल - 2
- तटस्थ के प्रति
- पैसे का गीत
- फूल
- फूल और उम्मीद
- बंद खिड़कियों से टकरा कर
- मैना
- रूमाल
- वतन का गीत
- वोट
- सच्चाई
- सुनो भाई साधो !
- सपना
- समकालीन
- समझदारों का गीत
- समय का पहिया
- समाजवाद
- सात सुरों में पुकारता है प्यार
- हे भले आदमियो !
- हत्या-दर-हत्या
- हाथ

साभार : स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

अतिथि

विकास का वैकल्पिक मॉडल

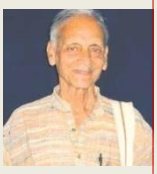

सच्चिदानंद सिन्हा

विकास के मॉडल की बात करना आज उसी तरह अर्थहीन है जैसे कभी यूटोपिया की बात करना समाजवादी आंदोलन के प्रारंभिक काल में था। कोई भी व्यवस्था सामने की हकीकत के संदर्भ में ही बनती है, बनी-बनाई कल्पना के अनुरूप नहीं। ऐसे किसी भी मनचाही ब्लूप्रिंट को लागू करने का प्रयास या तो धर्मांधता को जन्म देता है या तानाशाही को। आज चूंकि पर्यावरण का संकट विविध रूपों में हमारे अस्तित्व के लिए सर्वाधिक महत्व का बन गया है, इसलिए हमें समाज निर्माण की वैसी दिशा अपनानी होगा जो पर्यावरण के लिए कम से कम नुकसानदेह हो। अगर ऐसे परिवर्तन हमारे बूते के बाहर दिखें तो हम स्वयं सामाजिक जीवन को बदली स्थिति के अनुकूल ढालें। एक बुनियादी बात ध्यान में रखना जरूरी है। शोषणमुक्त समाज में पारिस्थितिक संतुलन बनाए रखने की क्षमता गैरबराबर समाज से अधिक होती है, क्योंकि गैरबराबरी से ही दिखावे के लिए बेजरूरत तामझाम पर खर्च जरूरी होता है, और बाजार आश्रित पूंजीवादी समाज में तो बेजरूरी वस्तुओं के उत्पादन व उपभोग की भूमिका इतनी महत्वपूर्ण है कि इसे नियंत्रित करने से पूंजीवादी व्यवस्था ध्वस्त हो सकती है। इससे यह तो जरूर कहा जा सकता है कि प्रकृति से तालमेल बिठा कर चलनेवाली कोई भी व्यवस्था समता के मूल्यों पर ही आधारित हो सकती है। इन बातों को ध्यान में रख एक सीमित संदर्भ में ही विकल्प की बात की गयी है। कुछ सीमाओं व कुछ संभावनाओं का संकेत भर।

वैकल्पिक मॉडल की चर्चा करने से पहले वर्तमान में जो मॉडल चल रहा है, उसके मूल तत्व और उसकी दिशा को समझना जरूरी है और इसके उन परिणामों को भी, जिनसे विकल्प की तलाश जरूरी लगती है। विकल्प कैसा होगा, यह बहुत कुछ इन परिणामों की समझ पर ही निर्भर करेगा। आदमी विधाता की तरह मनमाने ढंग से सृष्टि कर नहीं सकता।

किसी भी समाज की मूल संरचना को समझने के लिए उसके आर्थिक पक्ष को यानी आदमी के भोजन, आवास, परिवहन, उनके आपसी आदान-प्रदान में सहयोग और तनाव के तत्व और इन्हें संचालित करनेवाले बलों की पहचान जरूरी है। लेकिन इसके आगे हर समाज का आदर्श लक्ष्य होता है, जो नियामक शक्ति का काम करता है। यहां एक तरह का खिंचाव (टेलियोलॉजी) होता है। सब कुछ वर्तमान बलों के दबाव और संतुलन से निर्धारित नहीं होता, बल्कि इन बलों के परिप्रेक्ष्य में एक काल्पनिक, पर अटल आकर्षक बिंदु होता है जो लगातार समाज को अपनी ओर खींचता रहता है, यूनानी मिथक के 'सायरनों' की तरह।

मार्क्स ने उत्पादन के साधन और इनसे जुड़े उत्पादन संबंधों को विकास की दिशा का नियामक बता कर एक तरह के तकनीकी निर्यातवाद को जन्म दिया। उन्होंने यह भी मान लिया कि एक स्तर पर तकनीक और इससे जुड़े उत्पादन संबंध में विरोध पैदा होता है और इससे क्रांतिकारी बदलाव की शुरुआत होती है। पूर्व काल में यानी पूंजीवादी व्यवस्था के पहले जैसा भी हुआ हो लेकिन पूंजीवादी व्यवस्था में उत्पादन की तकनीक के उत्पादन संबंध यानी पूंजीपति और मजदूरों के संबंध, उनके बीच के तनाव पर हावी होते दिखते हैं। मजदूर पूंजीपतियों से कुछ बिंदुओं पर तनाव के बावजूद समग्रता में व्यवस्था के मूल्यों को आत्मसात कर उसके विकास के साथ ही अपने हित को जोड़ने लगा है। प्रारंभिक बागी तेवर को छोड़, जिसे समायोजन की पीड़ा कहा जा सकता है, मजदूरों में पूंजीवादी व्यवस्था को पूरी तरह खत्म करने का संकल्प नहीं दिखा। प्रतिस्पर्द्धा आधारित पूंजीवाद मजदूर समेत हर नागरिक को एस्केलेटर की एक सीढ़ी पर खड़ा कर देता है, इस आश्वस्ति के साथ कि वह ऊपर-ऊपर उठता जाएगा। व्यवस्था की सुविधा के हिसाब से तकनीक के नए आयाम विकसित होते रहते हैं। रूस, चीन और वियतनाम, सभी जगह कम्युनिस्ट नेतृत्व में क्रांतियां हुईं; वे तो पूंजीवादी विकास के प्रारंभिक दौर में ही थे और अंत में पूंजीवाद के विरोध की जगह फिर इसे पूर्णता में कबूल कर लिया गया। यह विडंबना ही है कि रूस और चीन की क्रांतियों से अति कठोर तानाशाही राज्य व्यवस्था और अतिउदार पूंजीवादी व्यवस्था पैदा हुई। इस सब से

यह जाहिर है कि बीसवीं सदी के शुरू में समतामूलक व्यवस्था की जो आशा जगी थी वह खत्म हो चुकी है। यही नहीं, तकनीकी स्वर्ग पर पहुंचने की राह पर नई बाधाएं खड़ी हो गई हैं। चिंता की बात यह है कि पूंजीवाद के आगे किसी अच्छे भविष्य की कल्पना जो दुनिया को मार्क्सवाद में दिखी थी, संदिग्ध है। इक्कीसवीं सदी के प्रारंभ में हम वैसे ही आश्वस्त नहीं हैं जैसे एक सदी पहले थे।

हम कहां जा रहे हैं, इसके सही आकलन के लिए उस खिंचाव के उद्गम और उसे ऊर्जा देने वाले तत्वों का, जिसका जिक्र पहले हुआ है, आकलन जरूरी है। हमें यह भी देखना है कि यह हमें किसी स्वर्णिम भविष्य की ओर ले जा रहा है या बरबादी के गर्त में।

वर्तमान औद्योगिक समाज के नियामक तत्व अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी से परवान चढ़ी औद्योगिक क्रांति और इसके वे आदर्श हैं जो इसकी गति और अतियों को औचित्य प्रदान करते हैं। इसमें, जैसा कि समाजशास्त्री मैक्स वेबर का मानना था, ईसाई धर्म की प्रोटेस्टेंट धारा की इस स्थापना की विशेष भूमिका थी जो व्यावसायिक सफलता को ईश्वरीय अनुकंपा का प्रमाण मानती है। अपने विकास के क्रम में पूंजीवादी व्यवस्था ने तकनीकी दक्षता और इससे जुड़ी व्यावसायिक सफलता को ईश्वरीय अनुकंपा से आगे बढ़ मानव समाज का सर्वोच्च और सर्वजनीन आदर्श बना डाला। इस मान्यता के सार्वभौम होने से आर्थिक गतिविधियों का क्षेत्र एक वैश्विक अखाड़ा बन गया है, जहां सभी खिलाड़ी ऐसी मार-पछाड़ में लगे हैं जिसमें प्रतिस्पर्द्धा की मौत से ऊर्जा ग्रहण कर अधिक बलिष्ठ बना जाता है। इस प्रक्रिया को अंग्रेजी से उधार शब्दों में "कॉरपोरेट कैनिबलिज्म" कहा जा सकता है। फिर इससे प्राप्त बल से विजेता दूसरे प्रतिद्वंद्वियों से भिड़ते रहते हैं। अनेक व्यावसायिक कंपनियों के दिवालिया होते जाने और कुछ के बढ़ते जाने का सिलसिला जारी रहता है। शेयर बाजारों में हर रोज होने वाले उतार-चढ़ाव का खेल इस प्रतिस्पर्धा का एक सौम्य प्रतिबिंब है। जीवन के मैदान में इसका दूसरा पहलू दिखाई देता है, जिसमें कारखानों, खदानों तथा खेत-खलिहानों में मजदूर मालिकों से वेतन भत्ते के लिए या रोजगार की गारंटी के लिए युद्धरत हैं, किसान भुखमरी की कगार पर रहने को मजबूर हैं और समय-समय पर आत्महत्या कर अनवरत चलनेवाले जीवन संघर्ष से छुट्टी पा लेते हैं। समय-समय पर अन्न संकट और अकाल से असंख्य मौतें तब भी होती रहती हैं, जब गोदामों में अनाज इस इंतजार में पड़ा रहता है कि अधिक मुनाफे पर उसे बेचा जा सके। इस समग्र प्रक्रिया को एक सुंदर नाम 'उदारीकृत व्यवस्था' दिया गया है।

यह कहा जा सकता है कि व्यवस्था की ये कमजोरियां तो रही हैं और इनकी आलोचना भी होती रही है लेकिन हमें रहना तो है इसी व्यवस्था से तालमेल या संतुलन बना कर। कुछ सुधार के उपाय सुझाए जा सकते हैं। कुछ समायोजन की तलाश हो सकती है। पर नयी उत्पादन तकनीक से जो ऊंचा जीवन स्तर इस व्यवस्था ने दिया है वह तो पुराने समय की किसी कल्पना से परे है। यह ठीक है कि ये सुविधाएं अभी थोड़े से लोगों तक सीमित हैं लेकिन आशा जगती है कि देर सबेर ये सुविधाएं सर्वजनीन हो जाएंगी। यही आशा है जो सारे संसार को एक तकनीकजनित स्वर्ग की आकांक्षा में मुग्ध रखती है और व्यवस्था को एक नियोजित पथ पर चलाती रहती है।

इस व्यवस्था के सुधार की दिशा में कुछ अलग उलझन है। इसके सुधार की तलाश व्यवस्था के उद्गम की ही ओर ले जाएगी और वहां बुनियादी सुधार का अर्थ होगा व्यवस्था की मौत। क्योंकि यह मनुष्य और प्रकृति दोनों के शोषण पर पूरी तरह आश्रित है। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में कम्युनिस्ट विचारधारा के आदि स्रोत कार्ल मार्क्स ने पूंजी के विकास में (जो इस व्यवस्था का निर्धारक है) श्रम के शोषण की केंद्रीय भूमिका को रेखांकित किया और आदिम संचय (प्रिमिटिव एक्युमुलेशन) की क्रूर प्रक्रिया से लेकर परिष्कृत रूप से स्थापित पूंजीवादी प्रतिष्ठानों में अदृश्य रूप से होनेवाले श्रमिकों के शोषण के विविध रूपों का विशद वर्णन किया। उन्होंने यह भी स्थापित किया कि उत्पादन प्रक्रिया में श्रमिकों के शोषण से प्राप्त श्रम का अधिशेष ही पूंजीपति के मुनाफे का स्रोत है। उत्पादन एवं विपणन में मजदूरों से चुराए गए श्रम के अधिशेष के बराबर के उत्पाद की खरीदारी का टोटा बना रहता है। इसी से पूंजीवाद के अनिवार्य संकट की बात की गई। पर, बार-बार मंदी का संकट झेलकर भी पूंजीवादी व्यवस्था ध्वस्त नहीं हुई। यूरोप का 1968 का छात्र विद्रोह या 'ऑकुपाई वाल स्ट्रीट' जैसे सांकेतिक विद्रोह, व्यवस्था के लिए महज सेफ्टीवॉल्व साबित हुए हैं। पूंजीवादी व्यवस्था अपने अंतर्विरोध के साथ उदारीकरण के नाम से ज्यादा विस्तार पाती रही है। जैसा कि पहले कहा गया है, उलटे रूस, चीन आदि में क्रांति के बाद के काल में पूंजीवाद

अधिक शक्तिशाली हो फिर स्थापित हो गया। क्यूबा एक अपवाद है और इसका कारण अपनी विशेष परिस्थितियों के अनुरूप विशालता को छोड़ लघुता की अर्थव्यवस्था की ओर मुड़ना था। पर, यह प्रचलित औद्योगिक विकास की मुख्यधारा के विपरीत आचरण है।

श्रमिकों के शोषण और इससे उपजे बाजार के संकट एवं ट्रेड साइकिल यानी उत्पादन की स्फीति और संकुचन के चक्र की समझ मार्क्स के अर्थशास्त्र में दूसरे विचारों से अधिक विश्वसनीय लगती है। लेकिन अनवरत औद्योगिक विकास की जो संभावना पूंजीवादी तकनीक में दिखाई देती थी उसके प्रति मार्क्स में एक सम्मोहन भी था जो 'कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो' में जाहिर होता है जहां पूंजीवाद की उपलब्धियों को इन शब्दों में गरिमा मंडित किया गया है : 'प्रकृति की शक्तियों को मनुष्य के मातहत करना, मशीन व रसायन शास्त्र को उद्योग और कृषि में लगाना, भाप से समुद्री जहाज, रेल और इलेक्ट्रिक टेलीग्राफ चलाना, पूरे महादेशों को खेती के लायक बनाना, नदियों से सिंचाई के लिए नहर, भूमि से हठात पूरी आबादी का उभर आना, किसी पूर्ववर्ती सदियों की कल्पना में भी सामाजिक श्रम की ऐसी उत्पादकता नहीं रही होगी।'

इस सोच में प्रकृति का निर्बाध दोहन दोषरहित दिखाई देता है और इसी से श्रम के मूल्य सिद्धांत में एक बुनियादी बात नजरअंदाज कर दी जाती है। पूंजी श्रम के दोहन से आती है, यह तो मूल्य के श्रम सिद्धांत से स्पष्ट हो जाता है। यह भी दिखाई देता है कि अंततः संचित पूंजी मजदूरों के श्रम के अधिशेष (सरप्लस लेबर) का संचय है। लेकिन इस बात को नजरअंदाज कर दिया गया है कि संचित श्रम सदा किसी उत्पाद का रूप लेता है और यह उत्पाद प्रकृति से प्राप्त कच्चे माल, खनिज आदि के रूपांतरण से एवं ऊर्जा प्रदान करने वाले कोयला, तेल आदि को जलाकर प्राप्त होता है। दरअसल, अत्याधुनिक उद्योगों में मानव श्रम - जो कि ऊर्जा का ही एक परिष्कृत और संचित रूप है - अपना महत्व खोता गया है और मशीन एवं रोबोट धीरे-धीरे इनका काम संभालने लगे हैं। इस कोण से देखने पर यह तुरंत जाहिर होता है कि चूंकि धरती के संसाधन - चाहे वे कच्चे उद्भिज पदार्थ हों, खनिज हों या ऊर्जा देनेवाले कोयला, पेट्रोलियम या प्राकृतिक गैस - इनके अतिदोहन से कुछ दिनों के बाद संकट पैदा होगा। एक तो इसलिए क्योंकि ये जीवाष्म ईंधन हैं और एक तरह से गड़े खजाने जो उतनी ही जल्दी खतम हो जाएंगे जितनी अधिक मात्रा में इनका दोहन होगा। आज का पर्यावरण संकट इन्हीं प्राकृतिक साधनों के अतिदोहन का परिणाम है और ज्यादा बुनियादी है। इसमें सबसे महत्वपूर्ण ऊर्जा का संकट है, जो ऊर्जा प्रदान करनेवाले साधनों के घटते जाने से और फिर इन्हें जलाने से पैदा कार्बन डाइऑक्साइड तथा अन्य गैसों के वायुमंडल में जमा होने से तथा कथित 'ग्रीन हाउस इफेक्ट' से, जिससे धरती का तापमान बढ़ता जा रहा है, पैदा हुआ है।

इसके परिणाम के बारे में इतना कुछ कहा जा रहा है कि यहां कुछ विस्तार से कहना जरूरी नहीं है। लेकिन प्रारंभिक चिंता के बाद अचानक औद्योगिक रूप से समृद्ध देशों में, जो प्रायः समशीतोष्ण या शीत कटिबंधों में पड़ते हैं, अब इस समस्या को नजरअंदाज किया जा रहा है। इससे यह आशंका पैदा होती है कि अब दो अलग-अलग दुनिया बनने जा रही है। एक संपन्न, प्रायः ऊंचे कटिबंध में पड़नेवाले देशों की और दूसरी गरीब व प्रायः विषुवत रेखा के पास के कटिबंधों में पड़नेवाले देशों की जिनमें हमारा देश भारत भी शामिल है।

यों तो ऊर्जा संकट और प्रदूषण के प्रभाव पर ई.एफ. शुमाखर के 'स्मॉल इज ब्यूटीफुल', और 'क्लब ऑफ रोम' के अध्ययन 'द लिमिट्स ऑफ ग्रोथ' के प्रकाशन के बाद से ही पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध से चर्चा होने लगी थी। लेकिन इस पर दुनिया के राष्ट्रों द्वारा सक्रिय पहल 1992 के ब्राजील के रियोडीजेनेरो में होने वाले शिखर सम्मेलन से शुरू हुई। इसके बाद 1994 में क्योटो प्रोटोकॉल नाम से एक समझौता हुआ और तय हुआ कि औद्योगिक देश ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन 2012 तक 1990 के स्तर से 5.2 प्रतिशत घटा देंगे। इस पर 1995 में मान्यता की मुहर लगी, लेकिन दुनिया के सबसे बड़े औद्योगिक देश और प्रति व्यक्ति सबसे अधिक उत्सर्जन करने वाले अमेरिका ने इस पर अपनी स्वीकृति नहीं दी। कार्बन डाइऑक्साइड का उत्सर्जन 1990 में 22.7 अरब टन था। क्योटो प्रोटोकॉल में इसे घटाकर 21.5 अरब टन करने का लक्ष्य था। लेकिन 2010 में यह बढ़कर 33 अरब टन हो गया। यानी घटने की बजाए डेढ़ गुना अधिक हो गया। दरअसल, औद्योगिक प्रगति के उन्माद में प्रदूषण फैलाने वाले गैसों के उत्सर्जन को कम करने के लक्ष्य को सदा नजरअंदाज किया गया। अंततः यह सारा संकल्प गायब हो गया। चीन और

भारत जैसे देश तेज विकास के लोभ में इसे नजरअंदाज करते रहे और विकसित देशों को अपने विकास का एक वैकल्पिक क्षेत्र दिखने लगा, जहां धरती का बढ़ता ताप नए भूभागों में विकास का दरवाजा खोलता नजर आने लगा है। अमेरिका तो पहले ही क्योटो समझौते से बाहर था। 2011 में कनाडा क्योटो समझौते से बाहर हो गया। सिर्फ यूरोप के देश कटौती करते रहे। कनाडा का बहाना था कि अमेरिका और चीन घटाने के बजाय उत्सर्जन बढ़ाते रहे हैं।

पर्यावरण की रक्षा से पश्चिमी देशों के पीछे हटने का असली कारण दूसरा लगता है। उत्तरी ध्रुव प्रदेश में विशाल पैमाने पर बर्फ के पिघलने से संसाधनों और यातायात का एक नया मार्ग खुल रहा है जो उनके लिए अधिक मुफीद है। अमेरिका और उत्तरी शीत कटिबंध में पड़ने वाले यूरोप के कुछ दूसरे संपन्न देशों को ध्रुव प्रदेश में बर्फ के पिघलने से खनिजों और प्राकृतिक गैसों का नया खजाना हासिल होने की संभावना है और रूस और दूसरे देश इस क्षेत्र में अपनी सामरिक उपस्थिति बढ़ाने में लगे हैं।

2010 के अगस्त महीने में रूस की एक प्राकृतिक गैस कंपनी 'नोवोटेक' ने एक लाख चौहत्तर हजार टन के एक टैंकर 'बाल्टिका' को उतरी ध्रुव प्रदेश के सागर के रास्ते चीन भेजा। उनका अनुमान है कि इस मार्ग के खुल जाने से यूरोपीय देशों के लिए एक छोटा और सस्ता व्यापारिक मार्ग खुलेगा जो प्रायः शीत कटिबंधों से होकर गुजरेगा। यह पथ मुरमास्क से शंघाई तक 10,600 कि.मी. लंबा है, जबकि स्वेज से होकर वहां पहुंचने का मार्ग 17,700 कि.मी. है। उत्तरी मार्ग के खुल जाने से कनाडा, अमेरिका, यूरोप के सभी देश चीन, जापान आदि भी यानी वे सभी देश जो आधुनिक व्यापार की दृष्टि से महत्वपूर्ण है तात्कालिक रूप से ग्लोबल वार्मिंग से लाभान्वित होंगे। आर्कटिक प्रदेश में खनिजों का विशाल भंडार होने का अंदाज है और इसलिए आर्कटिक के पास के देशों यथा - रूस, नार्वे, डेनमार्क, कनाडा, अमेरिका आदि में अभी ही इन खनिजों पर अधिकार जमाने के लिए राजनयिक होड़ शुरू हो गई है। उत्तर और दक्षिण का जो विभाजन पहले ही से उजागर होता आया है अब अधिक गहराएगा और उत्तर और दक्षिण के देश विकास की एक ही दिशा में आगे और पीछे, धीमे और तेज चलने वाले नहीं रह पाएंगे। तथाकथित विकासशील देशों को बिलकुल अलग राह अपनाने की मजबूरी होगी। शीत और समशीतोष्ण कटिबंधों के देश नए संसाधनों के चुकने तक इस अंधी दौड़ में ही रहेंगे। एक अर्थ में फिलहाल ऊंचे अक्षांशों में बसे देश एक ही तरह की 'एस्कॉर्च्ड अर्थ पॉलिसी' में संलग्न हैं और बाकी दुनिया को जलता छोड़ शीतल प्रदेशों की ओर पलायन की मुद्रा में हैं जहां से वे अपनी जरूरत के हिसाब से बाकी जगहों पर पांव पसारते रहेंगे। हम वैश्विक स्तर पर ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन और प्रदूषण पर कोई रोक नहीं लगा सकते और एक हद तक उससे प्रभावित होते रहेंगे।

लेकिन भारत और तथाकथित विकासशील देश अपने लिए एक अलग राह की तलाश तो कर ही सकते हैं जो प्रकृति पर विजय पाने के बजाय प्राकृतिक शक्तियों और परिवेश से सहयोग और प्रकृतिप्रदत्त जीवन की लय से जोड़ कर चलने के संकल्प पर आधारित हो।

जीवन का आधार पोषाहार है। प्रकृति में सहस्त्राब्दियों से एक "फूड चेन" (भोजन श्रृंखला) रही है जिसमें एक स्वाभाविक प्रक्रिया से असंख्य वनस्पतियां और जीव जीवन ग्रहण करते रहे हैं। इस फूड चेन का आधार सूरज से प्राप्त होने वाली ऊर्जा है जो अरबों वर्ष तक प्राप्त होती रहेगी, ऐसा वैज्ञानिकों का अनुमान है। शैवाल से लेकर, घास और विशाल वृक्षों के पत्तों तक सूरज की किरणों से प्रकाश-संश्लेषण की क्रिया होती है जिससे हवा के कार्बन डाइऑक्साइड से कार्बन ग्रहण कर वृक्षों और पौधों की डालियां और तने कार्बन ग्रहण कर सेलुलोज बनाते हैं, जिससे पत्तों और तनों का निर्माण होता है और ऑक्सीजन का उत्सर्जन होता है। इसी प्रक्रिया से असंख्य वनस्पतियों का विकास होता रहा है और इनमें अन्न, फल, मूल लगते रहे हैं। इन्हीं से मनुष्य और अनेक दूसरे जीव पोषण पाते हैं। इन वृक्षों के फूल और पत्तों से अनेक कीट और पतंगे भोजन पाते हैं। फिर इन कीट पतंगों को खाकर मेढ़क या दूसरे कई जीव अपना निरस्तार करते हैं। इनसे मेढ़क जैसे जीव भोजन पाते हैं और फिर इन जीवों से मछलियां आहार पाती हैं और स्वयं मनुष्य या दूसरे जीवों का आहार बनती हैं। वनस्पति से अनेक चौपाये खरगोश और भेड़-बकरियों से लेकर गाय, बैल और घोड़ा और ऊंट तक अपना आहार पाते हैं। फिर इनका शिकार कर शेर, भेड़िये आहार पाते हैं। जब से मनुष्य ने खेती और पशुपालन शुरू किया, कृषि कार्यों के अलावा ये पशु लंबे समय तक उनके भोजन में मांस, दूध आदि प्रदान करते रहे हैं। कुछ सीमित स्थानों पर जलनिकासी और सिंचाई के लिए

स्वाभाविक रूप से बहने वाली जलधारा मसलन झरनों या हवा चक्की का भी प्रयोग हुआ, जैसे हॉलैंड में जलनिकासी के लिए। लेकिन ये सब सूरज की ऊर्जा के स्वाभाविक प्रभाव के ही प्रतिफल थे। सहस्राब्दियों से धरती सूरज के ताप की ऊर्जा से लाभान्वित होती रही है।

फूलों के परागण की प्रक्रिया में सहयोग दे मधुमक्खियां शहद बनाती थीं और तितलियों में कुछ के प्रजनन चक्र द्वरा रेशमी धागों का प्रादुर्भाव हुआ। असंख्य पौधों और वृक्षों से सजावट के विविध रंग और स्वास्थ्य के लिए जरूरी औषध उपलब्ध होते थे। इन सब के पीछे सूरज की अक्षय ऊर्जा थी। इससे न सिर्फ (जैसा ऊपर कहा गया है) प्रकाश संश्लेषण के लिए ऊर्जा मिलती थी बल्कि समुद्र के वाष्पीकरण और हवा को गति देने के लिए ऊर्जा उपलब्ध होती थी।

यह सारी जीवन प्रक्रिया भौतिक शास्त्र के अटल माने गए "इट्रोपी" के सिद्धांत को पलटने जैसा चमत्कार रही है। इंट्रोपी का नियम है कि संसार भर में ऊर्जा अबाध रूप से सम स्तर की ओर बढ़ रही है, जहां ऊर्जा के संचरण का अंत हो जाएगा। इसे पूर्ण इंट्रोपी का नाम दिया गया है। लेकिन "बायोस्फेयर" में यानी धरती पर व्याप्त जीव जगत में असंख्य जीवों और वनस्पतियों के जीवन चक्र में इसके उलट ऊर्जा विविध स्तरों पर उपस्थित है और उसमें नीचे से ऊपर और ऊपर से नीचे दोनों ही तरफ से ऊर्जा का संचरण जारी रहता है। यह संभव इसलिए हुआ क्योंकि करोड़ों वर्ष से अनेक उथल-पुथल के बावजूद जैव जगत के आस्तित्व में आने के बाद से आज तक इंट्रोपी के नियम का उल्लंघन यानी एक तरह की सविनय अवज्ञा जारी रही है। इंट्रोपी के नियम को अपने छोटे से दायरे में पलटने के लिए जीव जगत को सूरज से ऊर्जा प्राप्त होती है। यह सूरज की ऊर्जा जीव जगत की लघुता के हिसाब से असीम है। जब मनुष्य जीवाश्मों या किसी दूसरे स्रोत से आज मशीन चलाता है तो इंट्रोपी बढ़ाने लगता है। अगर जीवन का कोई रहस्य है तो यही है। उसके पीछे एक व्यापक संवेदनशीलता है जो फूल के एक दल से लेकर मनुष्य तक में मौजूद है। आदमी फूल और तितलियों से लेकर पक्षियों तक पर काव्य की रचना कर सकता है तो इसलिए क्योंकि जीवन के इस रहस्य से सभी बंधे हैं। यह कहा जा सकता है कि मानव चेतना और संवेदना का सारा परिवेश इस फूड चेन पर आधारित है।

ऊपर वर्णित फूड चेन के ठीक उलटा एक दूसरा फूड चेन व्यापक होता जा रहा है। इस फूड चेन के प्रारंभिक सिरे पर अनेक तरह के गोश्त का, जिन्हें विशाल स्लॉटर हाउसों में या पॉल्ट्री फार्मों में कैद गाय, बैल, सूअर एवं मुर्गों को मारकर तैयार किया गया होता है, आयात किया जाता है। फिर यहां से अनेक तरह के वसा में तैयार तले-भुने पकवान, बिस्कुट आदि जिन्हें चटपट खाया जा सकता ह, - लोहे, टीन, एल्मुनियम एवं प्लास्टिक से तैयार डब्बों में भरा जाता है और खर्चीले वाहन से उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाता है। इस प्रक्रिया में व्यवहार में आने वाले हर आइटम को बिजली या गैस की भट्टियों से गुजारा गया होता है, या ऊर्जा गटकनेवाले फ्रिजों में रखा गया होता है। इस फूड चेन की शुरुआत खेत-खलिहान या बागानों से नहीं होती जहां पौधों में अन्न और वृक्षों में फल लगते हैं। बल्कि किसी ख्यात खाद्य व्यवसायी कंपनी जैसे वॉल मार्ट से होती है, और खर्चीले विज्ञापनों एवं परिवहन के माध्यम से इन्हें संसार के हर कोने में फैले उपभोक्ताओं तक पहुंचाया जाता है। इसमें ऊर्जा के अति व्यय से एक तरफ वैश्विक ताप बढ़ता है और दूसरी ओर संपन्न लोगों में मोटापा और उससे जुड़ी बीमारियां, जिनके लिए खर्चीले अस्पतालों की व्यवस्था करनी होती है। विशाल पैमाने पर कोयला, तेल और गैस से बिजली तैयार होती है या फिर बड़ी पनबिजली योजनाओं से जिनमें जंगल और आदमियों के आवास डूबते जाते हैं। डूबते जंगल जो कभी कार्बन डायक्साइड की मात्रा को घटाते थे, अब ऐसे गैसों का उत्सर्जन करते हैं, जिनसे धरती का ताप बढ़ता है।

सबसे चिंता की बात यह है कि नई कृषि व्यवस्था में रोजगार देने की क्षमता नगण्य है। 1885 में अमेरिका की आधी से अधिक आबादी खेती में लगी थी। 1985 में यह संख्या पूरी आबादी के 3 प्रतिशत से कम है। यह भी दिलचस्प है कि जिस चमत्कार से यानी मशीनीकरण से आबादी का सिर्फ 3 प्रतिशत विशाल मात्रा में अन्न उत्पन्न करता है उसी का फल यह भी है कि वहां का काश्तकार विभिन्न यंत्रों पर खर्च किए गए 5 कैलोरी ऊर्जा से सिर्फ 1 कैलोरी देने वाला अनाज पैदा करता है। यानी अपनी क्षमता में यह कृषि ऋणात्मक है। इससे हम समझ सकते हैं कि अमेरिकी कृषि काश्तकारों को भारी सब्सिडी दिए बगैर जिंदा क्यों नहीं रह सकती | इस सब्सिडी को लेकर विश्व व्यापार संगठन में विकासशील देशों से वार्ता में गतिरोध बना हुआ है।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। प्रारंभिक कृषि एक प्राकृतिक चक्र से बंधी थी जिसमें घास, वृक्ष आदि का जो अवदान अन्न और मवेशियों को चारा देने में होता था वह काफी कुछ पत्तों, पुआल, भूसा आदि के सड़ने या पशुओं के मल-मूत्र से जमीन में लौट आता था और उत्पादन चक्र को बिना विशेष क्षति के जारी रखता था।

इसके उलट, आधुनिक खेती उर्वरकों विशेषकर नाइट्रोजन देने वाले उर्वरकों पर निर्भरता एक दूसरा संकट करीब ला रही है। नाइट्रोजन प्रदान करने वाले उर्वरक का मूल स्रोत प्राकृतिक गैस है जो परिवहन में खर्च होने वाले ईंधन का भी सबसे आकर्षक स्रोत है क्योंकि यह कोयला या पेट्रोल से कम प्रदूषण फैलाता है। इस तरह हम मोमबत्ती को दोनों छोर पर जला रहे हैं। हमें उर्वरकों के लिए ज्यादा से ज्यादा प्राकृतिक गैस चाहिए और फिर परिवहन के लिए भी। हम कैसे एक संकट से उबरने के लिए दूसरे संकट में फंस रहे हैं, इसका एक उदाहरण पेट्रोलियम के घटते भंडार की आपूर्ति के लिए मक्का, ईख, जेटरोफा आदि से एथानोल तैयार करने का प्रयास है। इन फसलों के लिए भी हमें प्राकृतिक गैस से नाइट्रोजन देनेवाले उर्वरक बनाने पड़ते हैं जो प्राकृतिक गैस की आपूर्ति पर नया बोझ डालता है। ये सब उपाय अंततः समस्याओं को अधिक मुश्किल बनाते हैं।

प्राकृतिक गैस के साथ-साथ दूसरे जीवाश्म ईंधन भी घटते जा रहे हैं। आज दुनिया भर की अनियंत्रित महंगाई के पीछे इन ईंधनों के भंडार का तेजी से घटते जाना है। 1960 के एक या दो डॉलर प्रति बैरल के मुकाबले आज कच्चे पेट्रोल (क्रूड) की कीमत सौ डॉलर के लगभग पहुंच गई है। इनके स्रोत जैसे-जैसे विरल होते जाएंगे ये अधिक महंगे होंगे और चूंकि ये परिवहन से लेकर सभी तरह के उद्योग-धंधों और बिजली उत्पादन के लिए महत्वपूर्ण हैं ये महंगे होते-होते कृषि समेत अधिकांश गतिविधियों के लिए दुर्लभ हो जाएंगे। आज की अनियंत्रित महंगाई भविष्य के ऐसे ही संकट का संकेत हैं, जहां जीवन के सारे व्यापार ठप हो जाएंगे।

इस समस्या का एक राजनीतिक आयाम भी है जो पार्श्वभूमि से व्यवस्था को टिकाये रखता है और इसको विकाराल बनाता है। यह है औद्योगिक क्रांति और पूंजीवाद के विकास के साथ राष्ट्र-राज्यों का आस्तित्व में आना और वृहत आकार ग्रहण करते जाना। औद्योगिक क्रांति के पहले के दिनों में राज्य व्यवस्थाएं या तो राजाओं की साम्राज्य विस्तार की लालसा का प्रतिफल होती थी या कबीलाई आस्मिता और इसके दायरे की पहचान। सत्ताशीन कबीलाई शिखर पुरुष की शक्ति का प्रतीक इनका फैला हुआ राज्य या इनकी शानो-शौकत का इजहार करने वाली सजावट की वस्तुएं होती थीं। लेकिन राज्य के विस्तार का इनकी समृद्धि से सीधा लगाव नहीं होता था। यूरोप में वर्तमान राष्ट्र-राज्यों की पृष्ठभूमि दूसरी से छठीं शताब्दी तक का वह कबीलाई संक्रमण काल है जिसे "फॉल्केर वांडरूंग" का नाम दिया गया है। इसके क्रम में विभिन्न हिस्सों से और विशेषकर उतर-पूर्वी हिस्से से फैंक, अलिमानी ग्रोथ, विसी ग्रोथ, वांडल, एंग्लोसैक्सन आदि कबीलाई समूह यूरोप के विभिन्न भागों में आकर बस गए और पहले के निवासियों को या तो विस्थापित किया या उन पर वर्चस्व कायम किया।

यूरोप के ज्यादतर राष्ट्र-राज्यों का विकास इन्हीं के इर्द-गिर्द हुआ। औद्यौगिक क्रांति एवं पूंजीवाद के विकास के साथ इन राष्ट्र-राज्यों के दायरे को विस्तृत और सख्त बनाया गया है, जिससे छोटे-छोटे दायरे को तथा पूंजी या दूसरे अवरोधों को निरस्त कर व्यापारिक गतिविधियां बड़े दायरे में हो सकें । नेपोलियन के सैनिक अभियानों के बाद पूरे यूरोप में राष्ट्रवादी उभार आया और राष्ट्र-राज्यों की शक्ति का संकेंद्रीकरण हुआ। इस संपर्क से संसार भर में राष्ट्रीय भावना का उन्मेष हुआ। पूंजीवादी हित से इसका गहरा रिश्ता इस बात में दिखता है कि इधर, हाल के दिनों में राष्ट्र-राज्य के विखंडन की एक स्वाभाविक प्रक्रिया शुरु हुई है। यूरोपीय यूनियन के अस्तित्व में आने के बाद यूरोप के राष्ट्र-राज्यों का आर्थिक सामरिक महत्व नगण्य हो गया है। इससे इनमें कबीलाई आधार पर विखंडन की प्रक्रिया भी शुरू हुई है। सर्विया के वर्चस्व के विरोध में युगोस्लाविया के क्रोट आदि अलग हो गए हैं । चेकोस्लोवाकिया में चेक और स्लोवाक अलग राष्ट्र बन गए, ब्रिटेन में स्कॉट अलग होने के कगार पर हैं।

राष्ट्र-राज्यों का सबसे महत्वपूर्ण और भयावह पक्ष रहा है मिलिट्री इंडस्ट्रियल कॉम्प्लेक्स का अस्तित्व में आना। इससे राज्यों के सैनिक तंत्रों और औद्योगिक प्रतिष्ठानों का एक जबरदस्त गठजोड़ हुआ। 19वीं शताब्दी के अंत से लेकर आज तक राज्यों का स्वरूप चाहे जो रहा हो - राजशाही, तानाशाही या लोकशाही,

फौज और इसकी जरूरतों को पूरा करनेवाले एक विशाल औद्योगिक तंत्र का गठजोड़ लगातार मजबूत हुआ है। फौज देश में व विदेश में जरूरत होने पर उद्योगों के हितों की रक्षा के लिए तत्पर रहती है और उद्योग उन्हें नवीनतम आयुध और दूसरी उपयोग की वस्तुएं मुहैया कराते रहते हैं। फौज के आयुधों की मांग औद्यौगिक व्यवस्था की मंदी के संकट से उबारने में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अत्याधुनिक उपकरण पाने की होड़ में हर पांच दस साल में हथियार पुराने पड़ते जाते हैं और कबाड़ का ढेर बन जाते हैं। पर, चूंकि इन्हें बाजार की जरूरत नहीं होती, इनके रहते हुए भी नित्य नए हथियारों का उत्पादन जारी रहता है। यह सुविधा उत्पादन के किसी दूसरे क्षेत्र में नहीं है क्योंकि स्टॉक का बिकना उत्पादन प्रक्रिया के चलते रहने के लिए जरूरी होता है।

आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में राष्ट्र-राज्य और फौज के इस गठजोड़ की चर्चाएं इसलिए की गईं क्योंकि शुमाखर के 'स्मॉल इज ब्यूटिफुल' या गांधी के ग्राम गणराज्य की अवधारणा, जो किसी वैकल्पिक मॉडल की निर्देशिका होगी, वर्तमान फौजी राष्ट्र-राज्य के किसी मॉडल के साथ तालमेल नहीं बैठा सकती। अंतरिक्ष यानों पर अनुसंधान या परमाणु हथियारों का विकास धरती के संसाधनों का सबसे खतरनाक और निरर्थक अपव्यय है। जरूरत वैसे विकास की है जहां प्रकृति के स्वाभाविक रुझान, प्राकृतिक ऊर्जा के प्रवाह और धरती की बनावट के साथ कम से कम छेड़छाड़ हो। यह बड़े राष्ट्रों के ढांचों के साथ नहीं हो सकता। इनमें समय-समय पर होने वाली चुनावी कवायद के बावजूद असली सत्ता एवं संसाधनों का नियंत्रण अपने को लगातार फैलाने वाली नौकरशाही के हाथ में होता है। इसका सहज रिश्ता औद्योगिक प्रतिष्ठानों के उस तंत्र से बैठता है, जिसे प्रख्यात अर्थशास्त्री गैलब्रेथ ने टेक्नोस्ट्रक्चर का नाम दिया था। ये राष्ट्र-राज्य कैसे टूटेंगे, यह अभी दिखाई नहीं देता। लेकिन इसके बगैर अतिलघु इकाइयों में जनता के स्वनिर्णय के अधिकार की बात करने का कोई अर्थ नहीं होता। अभी हम जरूरी कदमों की कल्पना ही कर सकते हैं।

सबसे पहले तो वन प्रदेशों या अन्य जगहों में रहने वाले आदिवासियों के परंपरागत जीवन से कोई छेड़छाड़ नहीं होगी। इन्हें सैलानियों के हस्तक्षेप से भी मुक्त रखना होगा। वनप्रदेशों और आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में परिवेश से छेड़छाड़ प्रतिबंधित होगी। मसलन, वनों की कटाई, खनिजों के लिए खनन, उनके लिए असुविधाजनक रेल या रोड का विस्तार, क्षेत्र में बहने वाली जलधारा, झरनों, नदियों आदि के प्रवाह को रोकना आदि। ये सब तो उन लोगों की जीवन पद्धति को बचाने के लिए होंगे जो अब तक आधुनिक औद्योगिक सभ्यता की चपेट में नहीं आए हैं। लेकिन इससे आगे बाकी लोगों के जीवन में भी बड़े परिवर्तन की जरूरत होगी। शहरीकरण की प्रक्रिया को पलटना होगा और कृषि और दूसरे उद्यमों को इस तरह वितरित करना होगा कि कृषि और उद्योग एक दूसरे से जुड़े और करीब हों। गांव में ही, जहां खेती होती है, लोगों की जरूरतों को पूरा करने के लिए लघु और कुटीर उद्योग लगेंगे।

संपन्न देशों के ध्रुव प्रदेशों की ओर रुख करने और ऊर्जा स्रोतों पर उनकी कंपनियों की लगभग पूरी इजारेदारी का असर कुछ वैसा ही हो सकता है जैसा सेवियत यूनियन के विघटन के बाद क्यूबा की अर्थव्यवस्था पर हुआ था। अचानक सोवियत यूनियन से प्राप्त होने वाले सस्ते पेट्रोलियम पदार्थों का मिलना बंद होने और क्यूबाई चीनी के लिए बाजार खत्म हो जाने से उसे अपनी अर्थव्यवस्था को बिलकुल अलग तरह की दिशा देनी पड़ी। वहां के विशाल कृषि फार्मों को तोड़ छोटे सहयोगी फार्मों में बदल दिया गया। नियोजित ढंग से ट्रैक्टरों एवं पेट्रोल से चलने वाली खेती की दूसरी मशीनों की जगह बैलों से चलने वाले उपक्रम विकसित हुए। इसके लिए बैलों की वंशवृद्धि नियोजित ढंग से की गई। शहरों के इर्दगिर्द एवं शहरों में छोटी क्यारियों में साग-सब्जियों की खेती शुरू हुई जिससे लोगों की फल-सब्जी आदि की जरूरतें पूरी की जा सकें। कृषि और उद्योगों के साथ-साथ और आत्मनिर्भर विकास से परिवर्तन का खर्च बिलकुल कम हो गया।

आज के उन्नत औद्योगिक देशों के ध्रुव प्रदेश की ओर पलायन एवं जीवाश्म ऊर्जा के स्रोतों के विरल होने एवं उन पर संपन्न देशों की इजारेदारी के कारण अनुपलब्ध होने से आज के तथाकथित विकासशील देशों की भी वैसी ही स्थिति बनने वाली है, जैसी सोवियत यूनियन के विघटन के बाद क्यूबा की बनी थी। क्यूबा की तरह ही इन गरीब मुल्कों को भी यह सुविधा है कि ये अपेक्षाकृत गर्म प्रदेशों में हैं। इनकी ऊर्जा की जरूरत विकसित देशों की तुलना में काफी कम है। इन्हें अपने घरों को गर्म रखने की

जरूरत नहीं होती। इन गर्म प्रदेशों में मौसम के हिसाब से जीवन को गर्मी और सर्दी की अतियों से बचाने की पारंपरिक परिपाटी रही है, जिससे हजारों वर्ष से ये लोग जीवनयापन करते रहे हैं। अति ठंडे संपन्न देशों में भी आधुनिक ढंग से सर्दी झेलने का प्रबंध आदर्श नहीं कहा जा सकता। आर्कटिक प्रदेश के एस्कीमो सैकड़ों या हजारों वर्ष से वहां की भीषण सर्दी में सुविधा से जीने की पद्धति विकसित करने में सफल हुए हैं। इसी से अब तक उनके नजदीक के नार्वे, स्वीडन आदि के आधुनिक लोग ग्रीनलैंड में आधुनिक उपक्रमों के आधार पर रिहाइश बना नहीं पाए हैं। आस्ट्रेलिया के मूल निवासी वहां के मुश्किल रेगिस्तानी इलाकों में अपने छोटे घुमंतू गिरोहों में आखेट और कंद-मूल पर आधारित जीवन जी रहे हैं, जहां आधुनिक उपक्रमों से लैस यूरोप वासियों के लिए जीवन असंभव बना हुआ है। मनुष्य की स्वाभाविक प्रतिभा ऐसी है कि वह कठिन से कठिन परिवेश के अनुरूप जीवन पद्धति विकसित कर हजारों वर्षों से अपना अस्तित्व बचाए रहा है। प्रदूषण व ऊर्जा का नया संकट झेलने की नई प्रविधि वे इसी तर्ज पर विकसित कर लेंगे। मानवजनित पर्यावरण के संकट के पहले मानव के पूर्वज ऊष्मता, सूखा और हिमयुग के कई काल झेल चुके हैं। आज पर्यावरण का संकट प्रलय जैसा इसलिए दिखाई देता है क्योंकि अल्पकालिक तकनीकी सफलता ने यह भ्रम पैदा कर दिया था कि मनुष्य प्रकृति की शक्तियों पर विजय प्राप्त कर सकता है और इसे अपने जीवन को इसके अनुकूल ढालने की कोई विवशता इसके सामने नहीं है। इस अहं से मुक्त हो मनुष्य अपने वैज्ञानिक ज्ञान का इस्तेमाल प्रकृति से सहज साहचर्य स्थापित करने में कर सकता है। अगर कोई विकल्प का मॉडल बनेगा तो उसकी वैचारिकी का यही सार तत्व होगा।

एक बात साफ दिखाई देती है। धरती के संसाधनों का संतुलित व जीवन के लिए जरूरी उपयोग तभी संभव है, जब आदमियों के बीच गैरबराबरी न हो और वे पारस्परिक सहयोग पर आधारित छोटी इकाइयों में रहें जैसे कृषि क्रांति के पहले के दिनों में रहते थे। तब जीवन का आधार फल-मूल जमा करना और आखेट था। आज हम उस अवस्था में नहीं जा सकते। उसका सबसे बड़ा कारण हमारी विशाल जनसंख्या है। इस भीड़ भरी दुनिया में खेती ही जीवन का आधार हो सकती है। कृषि छोटी व सहयोगी होगी। यह एक सोची-समझी बाध्यता होनी चाहिए, नहीं तो हम उन पुराने दिनों की तरफ लौट सकते हैं जब गुलामों व कृषकों का सहारा ले विशाल साम्राज्य कायम हुए। समाज में सब कुछ अनियंत्रित नहीं होता। काफी कुछ मूल्यों के आधार पर मनुष्यों की संस्कृति द्वारा निर्धारित होता है। दस हजार साल के इतिहास का सबक हमें ऐसे समाज के सांस्कृतिक निर्धारण में सहायक होगा और अंततः हममें यह विश्वास दृढ़ करेगा कि प्रकृति और समग्र जीव जगत की रक्षा के साथ ही हमारा अपना अस्तित्व भी जुड़ा है। 'स्काई इज द लिमिट' वाला विज्ञापन बकवास है। आदमी धरती से बंधा है और वह तभी तक जीवित रहेगा जब तक यह बंधन कायम है।

(महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय के पंद्रहवें स्थापना दिवस (29 दिसंबर, 2012) पर आयोजित कार्यक्रम का उद्घाटन भाषण)

साभार- स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हि.वि., वर्धा

आलेख

सभ्यता का विकल्प : गांधी दृष्टि

चित्तरंजन मिश्र

विश्व विख्यात चित्रकार नन्दलाल बोस ने अपनी सेवाग्राम यात्रा और वहाँ महात्मा गांधी से मिलने का जो वर्णन किया है, उसमें कुटिया का निर्माण, सेवाग्राम की अन्य व्यवस्थाओं से संबंधित अनेक मार्मिक प्रसंग हैं। यह उल्लेख भी है कि वे जब गाँधी जी से उनकी कुटिया में मिलने पहुँचे तो मिट्टी एवं स्थानीय सामग्री से बने उस कक्ष को बहुत ध्यान से देख रहे थे- एक चित्रकार की पारखी नजर से उस कुटिया के स्थापत्य के समूचे सौंदर्य और गौरव को अपने भीतर उतार लेने के लिए। उनका ध्यान कोने में लकड़ी की तिपाई पर रखे ताँबे के लोटे पर गया, महात्मा गांधी जी की दृष्टि भी बोस महोदय की दृष्टि का ही पीछा कर रही थी, लोटे की ओर ध्यान से देखते हुए बोस महोदय से गांधी जी ने कहा – 'पानी है उसमें। उसका ढक्कन देख रहे हैं न! लोहे का है- बगल के गाँव के लुहार ने बनाया है। सुन्दर है न!' और उसकी सुंदरता पर कोई संदेह न रह जाय इसलिए जोड़ा – 'पीपल के पत्ते की तरह है।' एक गम्भीर विचारक और कर्मयोगी के शब्द तथा प्रख्यात चित्रकार की दृष्टि का संवाद है यह। चित्रकार परख रहा था- एक-एक चीज को, उसके रख-रखाव के तौर-तरीके को और विचारक सहेज रहा था उसकी परख को, एक खास संदर्भ और जीवन-दृष्टि के अनुसार। यह जीवन-दृष्टि थी- बगल के गाँव के लुहार द्वारा बनाये गये पीपल के पत्ते के आकार के लोहे के ढक्कन में सुंदरता को देखने-दिखाने और महसूस कराने की एक वैकल्पिक सौंदर्य-दृष्टि। जिस औपनिवेशिक सौंदर्य-दृष्टि में फंसकर सारा जमाना लगातार और भी ज्यादा पराधीन होता जा रहा है, उस सौंदर्य-दृष्टि के समानान्तर एक स्वराज्यकामी वैकल्पिक सौंदर्य-दृष्टि के विकास के बिना स्वाधीनता का असली अर्थ न तो समझा जा सकता है और न ही उसे अपने आचरण में उतारा जा सकता है। अपने जीवन-निर्वाह को सुगम बनाने के लिए स्थानीय संसाधनों का यथावश्यक न्यूनतम उपयोग और अपने सांस्कृतिक परिवेश की भावनात्मक पहचान के साथ शुद्धता की एक अपरिमित जीवन-दृष्टि। बगल के गाँव के लुहार द्वारा बनाये गये पीपल के पत्ते के आकार के ढक्कन को सुंदर मानने और दूसरों से भी मनवाने का सविनय आग्रह इस दृष्टि का प्रमाण भी है और प्रतीक भी। पश्चिम में चल रही औद्योगिक सभ्यता, जिसके मूल में सांस्कृतिक उच्छेद की आतंककारी विवशता है, तथाआधुनिकता के नाम पर पश्चिम के अन्धानुकरण की विनाशकारी अमानवीय नियति को पहचान कर गांधी जी ने इसे जबर्दस्त चुनौती देने के लिए ऐसी वैकल्पिक सभ्यता का सपना देखा था जिसमें मनुष्य की गरिमा अक्षुण्ण रह सके। व्यक्ति, वर्ग, वर्ण, समाज और देश- किसी को भी शोषक या शोषित होने के लिए अभिशप्त न होना पड़े, प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की जगह उनके साथ सामंजस्य बनाने का भाव हो, मनुष्य की चेतना में स्वार्थ का विष घोलने की जगह परदु:खकातरता का अनुभव हो, दूसरे की इच्छा से चलने की विवशता की जगह अपने मन-मस्तिष्क पर संयमपूर्ण नियंत्रण के साथ अपने मनोराज्य में स्वाधीनतापूर्वक विचरण करने का संतुलित विवेक बाहर से नहीं, अपनी ही आत्मा की पुकार से विकसित होता हो। गांधी का सारा जीवन और उद्यम इसी वैकल्पिक दृष्टि के विकास को केंद्र में रखकर एक अनवरत साधना की तरह चलता रहा।

आजकल, भारत का हर आन्दोलनकारी समुदाय और दो-एक अपवादों के साथ प्राय: सभी राजनीतिक दल चाहे वे सत्ता में हों या प्रतिपक्ष में गांधी जी के वाक्यों की दुहाई देकर ही अपना धन्धा चला रहे हैं। खासतौर से जो लोग सरकारों के खिलाफ आंदोलन आदि चलाते हैं तो सत्याग्रह और अनशन जैसे पवित्र साधनों का, बिना विचारे बहुत भौंड़े ढंग से इस्तेमाल करते हैं, और ऐसा करके अपने को गांधी से जोड़ने की हिकमत भी पा लेते हैं और हौसला भी। उनके आंदोलन के लक्ष्य तात्कालिक और एकायामी होते हैं, फिर भी वे अपने प्रेरणा-स्रोत के रूप में गांधी जी को ही याद करते रहते हैं। प्रचार पाने के लिए भी और जनता के भीतर गांधी जैसे महान आंदोलनकारी के साथ अपना नाम जुड़वाने के लिए भी। वे लोग अक्सर भूल जाते हैं कि गांधी के आंदोलन के पीछे एक गहरी नैतिक जीवनदृष्टि तो थी ही एक रचनात्मक सोच भी थी। कोई भी बड़ा आंदोलन सिर्फ विरोध की तेजस्विता (चाहे वह कितना भी सत्यनिष्ठ हो) मात्र से सफलता नहीं प्राप्त कर सकता यदि उसके साथ एक दीर्घकालिक

रचनात्मक दृष्टि, जो समाज के सम्पूर्ण ढांचे और लोगों की मानसिकता में परिवर्तन की आकांक्षी हो, भी कार्यरत न हो। हम याद कर सकते हैं कि गांधी जी के सत्याग्रह के साथ कितने तरह के सामाजिक कार्यक्रम जुड़े हुए थे। अछूतोद्धार, अस्पृश्यता निवारण, सामाजिक जीवन में स्त्रियों की सहभागिता और उनका महत्व, कमखर्ची एवं सादगी की जीवन पद्धति, भंगी समाज की मुक्ति के लिए मैला ढोने की प्रथा का अंत, गांवों के आस-पास की सफाई के लिए स्वयं प्रयास और सबसे बढ़कर उत्पादकता के स्वाभिमान के विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को उत्पादन प्रणाली से जोड़ने का प्रयास करते हुए चरखा चलाने पर बल। गांधी जी देश के प्रत्येक नागरिक को उत्पादक बनाना चाहते थे क्योंकि वे जानते थे कि उत्पादकता की संस्कृति ही व्यक्ति-चेतना में नैतिक मूल्यवत्ता का सृजन करती है, उसके भीतर के सभी तरह के भय समाप्त करती है। सभी आंदोलनकारियों एवं प्रतिरोधी चेतना के लोगों को यह बात गांधी जी से सीखनी चाहिए कि रचनात्मक सक्रियता के बिना प्रतिरोधक दर्शन भी टिकाऊ प्रभाव नहीं बना पाता है। इसी रचनात्मक सोच के कारण उनका विश्वास था कि दर्शन के सभी लोग यदि चरखा चलायें तो देश स्वाधीन हो जायेगा। वे बार-बार अपने संबोधनों में इस बात का जिक्र करते थे कि अहिंसा को संपूर्ण रूप से अपनाना और चरखा चलाना स्वाधीनता की प्राप्ति के दो ही निश्चित उपाय हैं। वे यह भी कहते थे कि यदि आपका (भारतीय जनता का) इन उपायों पर भरोसा न बना तो देश का नाश हो जायेगा।

चरखे के प्रति यह आस्था और विश्वास किसी तात्कालिक भावुकता का परिणाम नहीं है बल्कि वैकल्पिक सभ्यता के विकास के लिए एक सुचिन्तित विचार-प्रणाली से निकला हुआ आग्रह है, जिस विचार-प्रणाली की मूल-प्रतिज्ञा भारतीय परिस्थितियों के लिए अस्वाभाविक नकलची विकास की अवधारणा के समानान्तर एक देशज सुनियोजित विकास का नियोजन है। जिस विकास के कारण न तो किसी का शोषण होगा, न प्रकृति के साथ छेड़छाड़ होगी, न तो कोई बहुत अमीर हो जायेगा और न कोई बहुत गरीब होकर पशुवत जीवन के लिए अभिशप्त होगा। विकास का एक ऐसा सपना है यह, जिसमें सब बराबर के श्रम और बराबर के फल के भागीदार होंगे, सब उत्पादन प्रणाली जुड़े रहेंगे और सबको एक तरह के सुख-दु:ख के साथ जीवन-निर्वाह में सुगमता होगी। पर्यावरण को कोई नुकसान नहीं होगा, ऑक्सीजन की कमी नहीं होगी, प्रकृति के कोप का सामना नहीं करना पड़ेगा और करोड़ों लोगों को भूखा-नंगा रखने की कीमत पर कुछ सैकड़ा लोगों को अमीरी का नशा और गुमान नहीं होगा।

हालाँकि चरखा चलाने की इस नीति को, असंतुलित विकास की दौड़ में शामिल कुछ तत्कालजीवी लोग जैसे आज अव्यावहारिक बता रहे हैं, क्योंकि वे अपने सुख और अपनी सुविधाओं के संजाल के मोह-पाश में बुरी तरह फँसे हुए हैं, उस दौर में भी जब गांधी जी कह रहे थे कि 'सत्य और अहिंसा सत्याग्रह के मूलतत्व हैं और चरखा उनका प्रतीक है', इसका कम विरोध नहीं हुआ था। रवींद्रनाथ टैगोर, जो उस समय तक नोबेल पुरस्कार प्राप्त कर लेने के कारण भारत-विख्यात आदरणीय हो चुके थे और उनकी बातें देश-दुनिया में बहुत ध्यान से सुनी जा रही थीं, गांधी जी के चरखा वाले मत से सहमत नहीं थे। रवींद्रनाथ टैगोर की आपत्तियों को खारिज करते हुए गांधी जी ने 'सत्य का आह्वान' शीर्षक लेख में लिखा है- 'कबीर के गीत सुनाकर भूखों के कष्ट दूर कर सकना संभव नहीं है। उन्हें काम देना होगा, जिससे उन्हें खाना मिल सके। कुछ लोग कहेंगे हमें तो अन्न के लिए काम करने की जरूरत नहीं है, हम क्यों चरखा चलायें? कारण यह है कि हम जो खाते हैं, उसे हमने अर्जित नहीं किया, इसी से वह हमारा नहीं दूसरे का है। हम देशवासियों के मुंह का निवाला छीनकर जीवित हैं। तुम्हारी जेब में जितना पैसा आता है, वह कहाँ से आता है जरा एक बार इसका पता लगाने की कोशिश करो, तब पता चलेगा कि मेरी बात में कितनी सच्चाई है। चरखा सबको चलाना होगा- रवींद्रनाथ स्वयं भी चलावें। आज का कर्तव्य यही है- कल क्या होगा, भगवान् जानें।' यह थी एक वैकल्पिक सभ्यता की दृष्टि, उन लोगों के बरअक्स जो सिर्फ ऊँची-ऊँची हवाई बातों में, कल्पना के अपार वैभव में, देश की जनता की वास्तविक हालत से बेखबर सिर्फ विश्व-व्यवस्था से तालमेल बनाकर चरम और परम प्रश्नों को हल करने में लगे हुए थे। शायद आज भी समाज की वास्तविक समस्याओं, अंतिम आदमी के जीवन की सुगमता के उपायों को दरकिनार करके विश्व-बाजार की जरूरतों के अनुसार उपभोक्ताओं की संख्या बढ़ाने वाली नीतियां बन रही हैं, और इसके लिए संविधान में भी मनमाने संशोधन किये जा रहे हैं। गांधी जी का चरखा प्रतीक है स्वाधीनता का, सादगी का, कुटीर उद्योग-धंधे का, छोटे स्तर पर उत्पादन-प्रणाली का, प्रगति की

गलाकाट दौड़ में पीछे छूट गये आदमी की चिंता करने का, और अंग्रेजीपरस्त गुलाम मानसिकता को सहेजने वाले 'शाइनिंग इंडिया' के बदले देशज भारत का। यह चरखा एक उपकरण मात्र नहीं है, यह एक वैकल्पिक जीवन-दृष्टि है। चल रही दमनकारी, शोषणकारी, आतंककारी पूँजी के वर्चस्व और दैत्याकार अनियंत्रित दृष्टिहीन विकास के समान्तर एक सर्वसमावेशी सर्वोपयोगी निश्चिन्त जीवन-पद्धति का। सभ्यता के इस वैकल्पिक ढाँचे की खोज के प्रयास में गांधी सभ्यता को परिभाषित करते हैं, 'सभ्यता का वह आचरण है, जिसके द्वारा आदमी अपना फर्ज अदा करता है। फर्ज अदा करना अर्थात् नीति का पालन करना। नीति का पालन, अर्थात् अपने मन और इन्द्रियों को अपने वश में रखना। इस प्रकार आचरण करते हुए हम अपने आपको पहचानते हैं, यही सभ्यता है। इसके विरुद्ध जो है, वह असभ्यता है।' सभ्यता की इसी कसौटी पर वे अपने समय की पाश्चात्य सभ्यता की परख करते हैं और उसे इंकार करने का साहस दिखाते हैं।

गांधी जी की नीतियाँ देश की वास्तविक सूरत का बयान करने वाले उस आदमी के लिए थीं जिसकी आत्मा जगी हुई है- गुलाम नहीं है। उन लोगों के लिए नहीं, जो अपनी आत्मा को गिरवी रखकर सिर्फ सुविधाओं की गुलामी में फँसकर देश की आत्मा और स्वाभिमान के साथ लगातार छल कर रहे हैं। रवींद्रनाथ टैगोर की आपत्ति का निराकरण गांधी जी ने जिस भाषा में किया उस भाषा में भी कल्पना का वैभव है, पर उसका पक्ष श्रम का पक्ष है, पीड़ित का पक्ष है, उत्पादन का पक्ष है, भोग-वैभव और उपभोक्ता का पक्ष नहीं है। उनकी चिंता में भारत का वह अंतिम आदमी है जिसकी पीड़ा को कम करना स्वाधीनता का असली लक्ष्य है।

सारी दुनिया में विकास के नाम पर चल रहे अमानवीय व्यवसायवाद के ताण्डव से ऊबे हुए लोग, गांधी के विचारों की ओर आशाभरी निगाह से देख रहे हैं। उसकी इन्हीं विशेषताओं के कारण आज इक्कीसवीं शताब्दी के भयावह होते जा रहे परिदृश्य में जब हमारी औद्योगिक और यांत्रिक सभ्यता से संभव अति उत्पादन ने समूची दुनिया के अस्तित्व के सामने ही प्रश्नचिह्न लगा दिया है। भूमण्डलीकरण और विश्व-बाजार की व्यवस्था ने गलाकाट प्रतिस्पर्द्धा का वातावरण बनाकर 'आइए और छा जाइए' को एक मूल्य के रूप में स्थापित किया है, पैसे की संस्कृति ने परमेश्वर की व्यवस्था को भी अपदस्थ करने का भयावह दृश्य-विधान संभव कर दिया है, परस्पर अविश्वास का वातावरण बना हुआ है, विचार डरावने लगने लगे हैं, लोकतंत्र, राजतंत्र के पुर्जों से सँवारा जा रहा है, पूँजी और सत्ता के घिनौने गठबंधन ने लोकतंत्र को भी प्रश्नांकित करना शुरू कर दिया है, धर्म और संस्कृति साम्प्रदायिक ताकतों के हाथ की कठपुतली बनते जा रहे हैं, अपने को धर्मनिरपेा के रूप में खुद प्रचारित करने वाले मूल्यनिरपेक्ष भी होते जा रहे हैं, समाजवाद बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादन-तंत्र के स्वागत के लिए पलक पाँवड़े बिछाये हुए है, पूँजी के निरुपाय और विवश होती जा रही है, शिक्षा बेईमान बनाने वाली बनती जा रही है, शिक्षित समुदाय मं चीजों के प्रति आसक्ति लगातार गहरी होती जा रही है, प्राकृतिक संसाधनों के अनियंत्रित दोहन से प्रकृति का संतुलन बिगड़ रहा है, बच्चे तक आत्महत्या करने लगे हैं, मनुष्य जाति का अस्तित्व गहरे संकट में है, गांधी के विचार हमारे लिए चुनौती की तरह हैं। वे हमें सभ्यता और विकास का एक वैकल्पिक मार्ग सुझाते हैं जो सारी दुनिया में सहृदयता, सदाशयता, परदुःखकातरता और अपने को निरंतर जाँचते-परखते रहने का उत्सुक विवेक देते हैं। गांधी निरर्थक होती जा रही सभ्यता की चकाचौंध में अचकचाई हुई और क्रूरता की ओर बढ़ रही दुनिया का एक ऋजु विकल्प देते हैं, उसे स्वीकार करके उस पर चलना और आगे बढ़ना बहुत-बहुत साहस की माँग करता है। यह साहस दुनिया को दिखाना ही होगा क्योंकि तमाम सारी जड़ताओं के विरुद्ध हमारे पास और कोई रास्ता भी तो नहीं है – यदि अपने को बचाना है – मनुष्यता को बचाना है।

संस्कृत क्यों?

बलराम शुक्ल

केन्द्रीय विद्यालयों में संस्कृत तथा अन्यान्य भारतीय क्षेत्रीय भाषाओं की जगह पर जर्मन का पढ़ाया जाना असंवैधानिक ही नहीं अपितु भारत की स्वतन्त्र चेतना के भी विरुद्ध क़दम है। चूँकि इस निर्णय से सर्वाधिक दुष्प्रभाव संस्कृत पर पड़ रहा था और इसे पुनः संशोधित करने से संस्कृत को लाभ होगा अतः सरकार द्वार उपर्युक्त निर्णय को बरतरफ़ करने को कुछ लोगों द्वारा इसे राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ अथवा भाजपा का छिपा एजेंडा मानकर विरोध किया जा रहा है। वस्तुतः ऐसे विचार वालों को डर है कि संस्कृत का प्रचार कहीं उग्र राष्ट्रवाद अथवा साम्प्रदायिकता को बढ़ावा देने वाला न हो जाये। अथवा वर्तमान सरकार इसका अनुचित लाभ न उठाने लग जाये। वस्तुतः इस प्रकार की आशङ्काओं का कोई आधार नहीं है। अगर हम संस्कृत के द्वारा पोषित भारतीय परम्पराओं का अवलोकन करें तो हमें ज्ञात होगा कि संस्कृत ने कभी भी एक स्वर को एकाङ्गी रूप से बुलन्द नहीं किया। संस्कृत ने जिस भारतीय चरित्र का निर्माण किया वह सर्वसमावेशी, सहिष्णु तथा विज्ञानोन्मुख रहा। और यही कारण है कि आज भी भारतीय मनोवृत्ति सामान्यतः प्रगतिशील और सहिष्णु है। राजनैतिक तथा अन्य विचित्र कारणों से संस्कृत का भ्रान्तिपूर्ण विरोध करने वाले लोगों ने संस्कृत के विपक्ष में कुछ प्रमाणों को उपस्थापित किया जो बहुत सारे कारणों से प्रचलित तथा बद्धमूल हो गये। उनके विषय में वास्तविकता का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

औपनिवेशिक तन्त्र ने राष्ट्रीय पहचानों को मिटाने में कोई कसर नहीं छोड़ी। संस्कृत की छवि को धूमिल करने का जो प्रचार जो उन्होंने चलाया वह बहुत ही सफल रहा। 2500 साल पहले रचित पाणिनि की अष्टाध्यायी से पता चलता है कि संस्कृत उस समय गली, कूचों और बाजारों तक की भाषा थी। सामाजिक आवश्यकताओं के चलते उसका मानकीकरण हुआ और वह सम्पूर्ण भारत की योजक भाषा बनी। यह कार्य उसने हजारों वर्षों तक किया। उस समय में भी जब वह लोक भाषा नहीं रही। विविध संस्कृति तथा भाषा वाले देश को शाताब्दियों तक एक आत्मिक सूत्र में बाँधे रखने का श्रेय संस्कृत भाषा को ही है। संस्कृत ने यह कार्य किसी औपनिवेशिक मनोवृत्ति के तहत नहीं किया तथा किसी भी अन्य भारतीय भाषा का अंग्रेजी आदि की तरह शोषण करके नहीं किया अपितु संस्कृत का अन्यान्य भाषाओं के साथ हमेशा पोष्य पोषक का भाव रहा। अन्यथा भारतीय भाषाओं के विकास के इतने पहलू हमें दिखायी नहीं पड़ते– पालि–प्राकृत–अपभ्रंश–अवहट्ठ तथा आधुनिक भारतीय भाषायें। भारतीय भाषाओं के विकास के हर क्रम में संस्कृत ने उनका साथ दिया और उन्हें पुष्ट किया। प्राकृत या अपभ्रंश आदि भाषाओं के व्याकरण को संस्कृत माध्यम से लिखा गया। आज भी प्राकृत का साहित्य संस्कृत अनुवाद से ही पढ़ा जाता है । संस्कृत के भाषाविदों ने जब भी भाषा का विभाजन किया तो संस्कृत तथा प्राकृत में किया। संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों में जब भी उत्तम काव्य का उदाहरण दिया जाता है तो वह प्राकृत से ही दिया जाता है। संस्कृत के नाटक में लगभग आधे पात्र तो प्राकृत में ही बोलते हैं। द्रविड भाषाओं के साथ भी संस्कृत का सह–अवस्थान उसके साहित्य में विकसित मणि–प्रवाल शैली में देखा जा सकता है जिसमें आधी रचना द्रविड भाषाओं में तथा आधी संस्कृत में होती है । यह भाषिक सह–अस्तित्व की भावना संस्कृत द्वारा पोषित परम्परा में गुँथा हुआ है जिसमें औपनिवेशिक शोषण का कोई अवकाश नहीं रहा है। संस्कृत की अखिल भारतीय लोकप्रियता तथा प्रसार का सबसे बड़ा कारण भी यही है कि उसने क्षेत्रीय भाषाओं के साथ प्रेमपूर्ण भाव रखा। इस प्रकार संस्कृत ने उस सूत्र की भाँति कार्य किया है जिसने सारे भारत को भावनात्मक तथा आत्मिक रूप से एक रखा। विश्व में इस प्रकार का उदाहरण हमें बहुत ही कम मिलता है। मिस्र की प्राचीन सभ्यता तथा मिस्री भाषा को अरब उपनिवेशवाद ने इस तरह समाप्त किया कि अब उसे जानने वाला वहाँ नहीं है। कहने की आवश्यकता नहीं कि अंग्रेजी आधुनिक युग में यहीं कार्य कर रही है। प्रसिद्ध भाषावैज्ञानिक डेविड क्रिस्टल के अनुसार एक सप्ताह में बहुत सारी भाषाएं दम तोड़ दे रही हैं। संस्कृत ने प्राचीन काल से ही इस प्रवृत्ति का विरोध किया। उसने जो मॉडल सामने रखा वह है– शोषण विहीन

बहुभाषिकता। हर भारतीय बहुभाषी होता है– भारतीयों के लिये प्रयुक्त यह कथन संस्कृत के द्वारा पोषित परम्परा का ही प्रतिबिम्बन है। संस्कृत के शास्त्रकारों ने बहुभाषाविद् होने की प्रवृत्ति को हमेशा से प्रोत्साहित किया।

संस्कृत के बारे में प्रचलित अवधारणाओं में से एक अवधारणा यह भी है कि यह एक वर्ग विशेष की भाषा है तथा इसने एक प्रकार की विचारधारा को प्रोत्साहित किया। संस्कृत के प्रति सम्पूर्ण दृष्टि के अभाव ने इस प्रवाद को हवा दी है। अगर हम संस्कृत में लिखी विचार परम्परा का अध्ययन करें तो हमें पता चलेगा कि संस्कृत ने हमेशा विभिन्नता तथा पारस्परिक विरोधी मतों को समान रूप से स्वर दिया है । इसमें अगर वेदों को परम प्रमाण मानने वाला मीमांसा दर्शन यहाँ है तो वेदों को धूर्तों की रचना कहने वाला चार्वाक दर्शन भी संस्कृत भाषा में ही है। 6 आस्तिक दर्शनों में से भी केवल तीन ही अपनी दार्शनिक प्रणाली में ईश्वर की आवश्यकता का अनुभव करते हैं। विभिन्न स्मृतिओं में परस्पर भिन्न रीति रिवाज तथा धार्मिक नियमों का वर्णन मिलता है। पुराणों का पारस्परिक विरोधी दीखने वाले वर्णन प्रसिद्ध ही हैं। यह उक्ति अत्यन्त ही प्रचलित है – नैको मुनिर्यस्य मतं न भिन्नम् यानी कोई भी ऐसा विद्वान् नहीं है जिसका मत भिन्न नहीं है। भारत में जो अनेकता में एकता है उसका प्रतिबिम्बन संस्कृत में बहुत ही सच्ची रीति से हुआ है। संस्कृत को अखण्डता में देखने से उसका पन्थनिरपेक्ष पहलू प्रकट होकर सामने आता है जो स्वतन्त्र भारत में हमारे संविधान की आत्मा है। अगर संस्कृत द्वारा परिपोषित मुख्य भारतीय विचार धारा की प्रकृति मत–निरपेक्ष न होती तो भारत की स्थिति भी विश्व के बहुत सारे उन देशों की तरह हो जाती जिनके नाम में तो गणतन्त्र या लोकतन्त्र तो लगा है परन्तु उनकी स्थिति घोर साम्प्रदायिक है।

संस्कृत सम्पूर्ण भारत में कनेक्टिंग लैंग्वेज की तरह तथा वैज्ञानिक चर्चाओं की भाषा के रूप में फैली होने के कारण ज्ञान के ग्रहण अथवा प्रसार के लिये एक आवश्यकता की तरह भी थी। प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन की भाषा यद्यपि पालि थी परन्तु उसके व्यापक प्रसार तथा बौद्धिक स्वीकृति तो संस्कृत ने ही दिलायी। त्रिपिटकों के अलावा बौद्धों के गम्भीर दार्शनिक ग्रन्थों तथा लोकप्रिय काव्यों को भी संस्कृत ने उसी शिद्दत के साथ सहयोग दिया ताकि उनका प्रसार व्यापकतर हो सके। जैनों ने भी इसी तरह अर्धमागधी प्राकृत के अलावा संस्कृत से सहायता ली तथा उसे अभूतपूर्व ढंग से समृद्ध किया। कोई भी आस्तिक दर्शन बिना चार्वाक, जैन तथा बौद्ध दर्शनों के हवाले के पूरा नहीं होता। इन अवैदिक दर्शनों के मूल स्वरूप के पुनर्निर्माण में संस्कृत का महान योगदान रहा है । यहाँ तक कि जब मुस्लिम आक्रमणों से त्रस्त पारसी भारत में आये और उन्होंने अपने धर्मग्रन्थों के अनुवाद की बात सोची तो उन्हें 14वीं सदी में भी उन्हें संस्कृत ही ऐसी भाषा प्रतीत हुई जिसमें वह अपनी बात कह सकते थे और जो उनके विचारधारा को ससम्मान अनन्त काल तक सुरक्षित रख सकती थी। और ऐसा बिल्कुल नहीं है कि केवल संस्कृत ने ही इन्हें सहारा दिया संस्कृत को भी इन परम्पराओं से भरपूर समृद्धि मिली। किसी एकांगी दृष्टिकोण को लेकर चलने वाले किसी माध्यम का इस तरह हजारों वर्षों तक टिक पाना असम्भव था। इस प्रकार संस्कृत ने तर्क तथा स्वतन्त्र चर्चा पर आधारित एक स्वस्थ भारतीय मानसिकता का पोषण हजारों वर्षों तक किया।

इतना होने पर भी संस्कृत को केवल कर्मकाण्ड की भाषा मानकर उसके प्रति आजकल निकृष्ट दृष्टि रखी जाती है उसका बहुत बडा कारण यह है कि हमारी दृष्टि संस्कृत के प्रति विशद नहीं है । संस्कृत के वे क्षेत्र जो शुद्ध रूप से वैज्ञानिक हैं अचर्चित तथा उपेक्षित रह जाते हैं। हाल में ही मञ्जुल भार्गव ने गणित में नोबल प्राप्त किया। उसमें उन्होंने संस्कृत के छन्दःशास्त्रीय सिद्धान्तों को प्रमुख प्रेरक बताया। प्रश्न यह है कि हमारे छात्र उन सिद्धान्तों का प्रयोग क्यों नहीं कर पा रहे हैं। उत्तर आसान है क्योंकि वे संस्कृत के वैज्ञानिक पहलुओं से विमुख हैं। हम केवल फलित ज्योतिष को देखकर उसकी निन्दा करते हैं उसके मूल में विद्यमान गणित के अद्भुत सिद्धान्तों का मूल्यांकन नहीं कर पाते हैं। वस्तुतः संस्कृत में दर्शन तथा धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त या उनके अन्तर्गत भी विज्ञान तथा गणित इत्यादि के बहुत सारे अनछुए सिद्धान्त यत्र तत्र बिखरे पड़े हैं संस्कृत भाषा के बिना उन तक स्वस्थ पहुँच सम्भव नहीं है। और इसके बिना भारत विश्व पटल पर अपनी वास्तविक पहचान बनाने में अक्षम है। गणित के सभी प्रमुख क्षेत्रों में संस्कृत के शुद्ध सैद्धान्तिक ग्रन्थ मिलते हैं। वैदिक काल से ही गणना तथा रेखागणित के पेंचीदा सिद्धान्तों पर चर्चा होने लगी थी। बौधायन शुल्ब सूत्र में यज्ञवेदिका के प्रसंग में बौधायन प्रमेय चर्चित है जिसे हम पाइथागोरस प्रमेय के नाम से जानकर कृतकृत्य हो जाते हैं। अंकगणित में भास्कर, ब्रह्मगुप्त तथा महावीर रेखागणित में

बौधायन तथा परमेश्वर त्रिकोणमिति में माधव के योगदान उल्लेखनीय तथा अध्ययनसापेक्ष हैं। पाई के मूल्य के सम्बन्ध में सबसे पहले महावीर नामक गणितज्ञ ने 850 ई. में प्रयत्न किया था। कणाद का परमाणु सिद्धान्त ईसा से भी पहले का है। गति, तन्यता आदि से सम्बन्धी अन्य सिद्धान्त भी वैशेषिक दर्शन में प्राप्त होते हैं। पृथ्वी के भ्रमण तथा गुरुत्वाकर्षण एवं प्रकाश की गति से सम्बन्धित वैज्ञानिक सिद्धान्तों की वेदों के मन्त्रों से लेकर आर्यभट्ट, वराहमिहिर आदि तक लम्बी तथा अटूट परम्परा है जो संस्कृत भाषा में ही निबद्ध है। इसके अतिरिक्त रसायन शास्त्र, धातु विज्ञान, स्थापत्य शास्त्र से सम्बन्धित ग्रन्थों की अविच्छिन्न श्रृंखला है। इनमें अनेकानेक ग्रन्थ ऐसे हैं जिसे वैज्ञानिक मनोवृत्ति के ही विद्वान् समझ सकते हैं। जब संस्कृत में सभी क्षेत्रों के ज्ञान विज्ञान समाहित हैं तो आवश्यक है कि सभी लोगों की पहुँच संस्कृत तक हो तथा किसी स्तर पर उनका संस्कृत के साथ परिचय कराया जाये जिससे ज्ञान की इस सामग्री को उनका वास्तविक वारिस मिल पाये और उनकी सुरक्षा हो सके। इसके लिये आवश्यक है कि हम संस्कृत की ओर अपनी सभी पूर्वाग्रहों से मुक्त होकर प्रवृत्त हों ताकि संस्कृत के उस स्वरूप को पहचान सकें जिसने सहस्राब्दियों तक हमारा पोषण किया है तथा अब भी उसी तरह पोषण करने में समर्थ है। संस्कृत के इस अद्भुत उपकारी स्वरूप को देखकर ही इसे देवभाषा कहा गया था। इसका तात्पर्य इसे धर्मविशेष मात्र से सीमित करना नहीं था। वैश्वीकरण के इस युग में हमें सर्वाधिक आवश्यकता सबलता की है। यह कार्य संस्कृत से ही सम्भव है। यह हमें हमारे जड़ों से जोड़ती है और जड़ों से जुड़े ही वृक्ष में ही जीवन और प्रगति की सम्भावना होती है।

लालित्य

बादलों को उतरने के लिए थोड़ी जगह दें

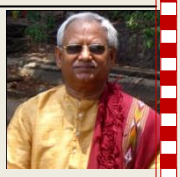

अरुणेश नीरन

कृष्ण जब जन्मे तब रात अँधेरी थी लेकिन आकाश जलभरे बादलों से भरा हुआ था। काले-काले मेघों की पंचायत जुटी थी और काला अँधेरा उनसे मिल कर कृष्ण का सृजन कर रहा था। राधा उनकी वर्षा बनीं और कृष्ण बरस कर रिक्त हो गए। राधा भी बरस कर रिक्त हो गईं। काले मेघों की उज्जवल वर्षा ने बरस-बरस कर पृथ्वी को उर्वर बना कर रस से भर दिया। यही रस भारतीय साहित्य, संस्कृति और जीवन में बार-बार छलका। जब-जब हम अनुर्वर हुए - वे बार-बार बरस कर हमें उर्वर बनाते रहे। राष्ट्रजीवन की पुण्य सलिलाओं का अमृत कुंभ भरते रहे। मेघों की वर्षा में निसर्ग तो उतरता ही था, पूरा का पूरा सर्ग भी उसमें भीग कर पुनर्नवा होता रहता था। भूख, बाढ़, विध्वंस के साथ उसमें फुहार, रिमझिम, गीत नृत्य पर्व, विरह विषाद, रस की धाराएँ भी बहती थीं और वह संगीत भी होता था जिसकी महफिल में अलग-अलग राग, ताल, और चाल-ढाल की बंदिशें मिलकर एक ऐसी मनोरम इकाई की रचना करती थीं जिसे भारत कहा गया।

मेघ हैं तो जल है। जल है तो जीवन है। जीवन है तो रस है। यह रस सूख रहा है इसलिए सब व्याकुल हैं। नदियों ने महान संस्कृतियों को जन्म दिया और संस्कृति-पुत्रों ने नदियों की धाराएँ मोड़कर, उन पर बाँध बना कर, उन्हें नहरों में बाँट कर उन्हें ऐसा निर्जल कर दिया कि अर्घ्य देने के लिए भी जल नहीं बचा! बनारस के दशाश्वमेघ घाट पर गंगा के भरे हुए जल को देखिए तो, संस्कृति की शव-यात्रा निकलती हुई दिखाई देती है। मथुरा-वृंदावन में राधा-कृष्ण की जमुना में आचमन के लिए भी जल नहीं है। महेश्वर में नर्मदा पर डूबता हुआ सूरज और पिघलती हुई शाम उदास कर देती है। नदियों को काट कर नहरें तो निकाल दी गईं लेकिन हम क्या किसी नदी को भी जन्म दे सकते हैं?

पहाड़ टूटे, जंगल कटे, नदियाँ बँटी और धीरे-धीरे सब सूखने लगा। वर्षा का वह नौसर्गिक संगीत जो पूरे भारत के जीवन में बजता और बहता था, धीरे-धीरे मौन होने लगा। लोग आबे-जमजम के पास पहुँच कर भी प्यास से मरने लगे। शब्द, जो सर्ग और निसर्ग की गाँठें खोलकर, हमारी जीवन-नौका पर पाल की

तरह तन कर उसे बहाते थे और हवा की मार से हमें बचाते थे - उनके भीतर का जल भी सूखने लगा। प्रवाह रुक गया और नौका बालू में फँस कर रुक गई। जब प्रवाह रुकता है तो सब कुछ दृश्य बन जाता है। शब्द भी दृश्य बन गए। उन्हें देखकर जब आँखें भर जाती थीं तब वे रुक कर आँसू सूखने की प्रतीक्षा करते थे। दृश्य किसी की प्रतीक्षा नहीं करता, आगे बढ़ जाता है। सब कुछ दृश्य हो गया और अदृश्य के अस्तित्व पर संदेह होने लगा। सब मिटने लगा - गीत, नृत्य संगीत, साहित्य, संस्कृति और वह सब - जो जीवन की आपाधापी में हमें रस देता था, सांत्वना देता था, शक्ति देता था और वेदना-संवेदना और प्रार्थना से जोड़ता था इसलिए नदियाँ कंकाल होती गईं, जल के स्रोत सूखने लगे और पानी पर भी बाजार का कब्जा हो गया।

लोगों को दृश्य बनना था इसलिए अब मेघों की जरूरत नहीं रही। मेघ भी सूखने लगे। नीति-अनीत, राग-विराग सर्ग-निसर्ग सब बाजार के हवाले हो गए। जब जल सूखता है तो धरती भी बँटने लगती है। भाषा, क्षेत्र जाति, संप्रदाय के नाम सब कुछ बँटने लगा। मेघ जब उदास होते हैं तो कृष्ण का अंधकार और राधा का प्रकाश भी प्रवाह से दृश्य बन जाता है। तब भक्त तो विभक्त होते ही हैं, प्रकाश और अंधकार भी बँट जाते हैं।

पहले मेघ आते थे तो जीवन का चातुर्मासी समारंभ होता था। जेठ से आश्विन तक मेघ देवता ऐसी संगीतमय रचना करते थे जिसके पात्र हम सब तो होते ही थे, पशु-पक्षी भी होते थे, वन-उपवन होते थे और होती थीं भरी हुई नदियाँ - जिनके तट पर राष्ट्र जीवन का अमृत कुंभ भरता था। लेकिन वे धीरे-धीरे सूखती गईं। उदास, सूखी हुई और सड़ती हुई नदी के पास आचमन के लिए भी जल नहीं बचा। उनके अड़ार पर अड़े वृक्षों के पास भी इतने पत्ते भी नहीं बचे कि वे किसी मंगल कलश को ढँक सकें।

आस्था के सातत्य से मिलकर बनता था वर्षा-राग। शुरुआत होती थी मेघों की पखावज से। उसके पूर्व, जेठ में ओलों की वर्षा होती थी। अभी लोग सहमे कि आषाढ़ के पहिले दिन से धारा-नृत्य की शुरुआत हो जाती थी। पूरा समाज मिल कर गाने और नाचने लगता था। कृष्ण पक्ष की अष्टमी की आधी रात को कृष्ण जन्म लेते थे तो शुक्ल-पक्ष की अष्टमी को राधा का अवतरण होता था। बुद्ध एक माह पहिले आए वैशाख की पूर्णिमा को। जलते, प्यासे, सूखते जनजीवन को उन्हें करुणा की वर्षा से सींचना था। जीवन से निर्वाण तक उनकी यात्रा वर्षारंभ के पूर्व इसी पूर्णिमा के प्रकाश की छाया में चलती रही। उन्हें पूरे जीवन चलना था और वर्षा को साक्षी बना कर वे सारे उपदेश देते थे जो संत नहीं, वैज्ञानिक देते हैं। उन्होंने कहा, पहले अनुभव फिर बाद में श्रद्धा। लोग सुनते आए थे, पहले श्रद्धा फिर अनुभव। वे जानते थे कि सारे बँटवारे की जड़ वह सूत्र है जो कहता है पहले विश्वास फिर फल या परिणाम। इस सूत्र ने तो कर्मकांड बनाया उसमें सब बँटा हुआ था। धर्म और राजनीति के सहारे ऐसा जाल बुना गया जो बाहर से एक था लेकिन भीतर टुकड़ों से भरा हुआ था। उनके पास वैज्ञानिक की आँख थी जो मूल के कारणों को देखती थी। लेकिन उन्होंने जो देखा उसे कहा अपने अनेक वर्षावासों में, मेघों को साक्षी बना कर।

जेठ और आषाढ़ मिल कर बने बुद्ध और कृष्ण। कोई वर्षा के इस पार था, कोई उस पार - लेकिन दोनों के बीच में वर्षा थी। तब जल की कमी नहीं थी, सब लबालब भरा हुआ था। जल और मेघ की तरह बँटे होकर भी सब जुड़े हुए थे।

जेठ की आँच न हो तो आषाढ़ आएगा कैसे? ग्रीष्म ताप के कोड़ों से जब समुद्र को जगाता है तो उसके आँसू बादल बनते और आकाश में छा जाते हैं। हवा का रथ उन्हें ले जाता है पर्वत पर, वन-प्रांतर में, नदी-पोखर में, मनुष्य के भीतर बढ़ते हुए पठार में। धरती अन्न-जल से भर जाती है, पर्वत पर झरनों का जन्म होता है, झरने मिल कर नदी की रचना करते हैं। वह सबको सींचती हुई, प्यास बुझाती हुई, फिर सागर के पास चली जाती है। पूरा जीवन-चक्र समाया हुआ है ऋतु चक्र में।

आषाढ़ की पूर्णिमा में चंद्रमा का घट अमृत से भर जाता है और वह सवन करता हुआ, उफनता हुआ पृथ्वी पर गिरने लगता है। सवन से गिरी हुईं अमृत की बूँदे उत्सव की रचना करती हैं। सवन से शब्द बना है 'उत्सव'। और जीवन, उत्सव नहीं तो और क्या है? आषाढ़ से ही शुरू होती है वह लीला, जिसमें राग-विराग, भक्ति-ज्ञान, धर्म-विज्ञान, सागर-पर्वत - सबका भेद मिट जाता है। यह वर्षा-राग है जो लोक-परलोक के भेद को भी मिटा देता है।

मेघों से टूट रहा है हमारा संवाद। बँटे हुए जन-मन पर वे अब भी बरसते हैं लेकिन सातत्य के साथ नहीं, रुक-रुक कर। कहीं बाढ़ आकर सब बहा ले जा रही है, कहीं लोग प्यास से मर रहे हैं। अतिवृष्टि और अनावृष्टि - दोनों ओर प्रलय - मृत्यु-राग, बजा रहे

हैं वही मेघ। उनके जल को ग्रहण करने के लिए हमारे पास जगह ही कहाँ है? अँजुरी भी कहाँ खाली है कि वे बरसें और सारे भेद मिटा कर सब एक कर दें।

थोड़ी जगह दें बादलों को उतरने के लिए। नहीं देंगे तो जल जीवन नहीं; जहर बनकर हमको मारेगा और बाढ़ बन कर हमारी बस्तियाँ बहा देगा। जगह देंगें तो बौछार, झड़ी और रिमझिम बन कर आस्था के कुंभ को भरता रहेगा, संस्कृतियों की रचना करने वाली नदियों को सदानीरा बनाते हुए उनके प्रवाह को रुकने नहीं देगा। पहले नदियाँ जब अपने तटबंध तोड़ देती थीं तो हम उनकी पूजा करके उन्हें मनाते थे। गंगा, यमुना, नर्मदा, कावेरी, गोदावरी, सरयू का क्रोध उतारने के लिए क्या किसी ने तट पर खड़े होकर आरती की? नहीं की, तो क्यों?

कहानी

बाकी धुआँ रहने दिया

राकेश मिश्र

बात उम्मीद के बाहर थी लेकिन लोग-बाग अगर अब भी दुनिया के टिके होने की सबसे भरोसेमंद टेक उम्मीद को ही मानते हैं तो अविनाश को मात्र इसीलिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता कि अब वह किसी उम्मीद से बनारस आया था वैसे उसे कोई खास उम्मीद थी भी नहीं कि जिस लड़की से उसका पिछले साल ही 'तीया-पाँचा हो चुका हो, अब दुबारा उससे कोई नई बात शुरू हो जाएगी या वह बीती बातों को भुला देगी या उनमें से कोई ऐसी बात मुमकिन हो जाएगी जो वह पिछले दिनों दिल्ली के अपने एकाकी दिनों में सोचता रहा था। सोचता क्या रहा था कहे कि लिखता रहा था। दरअसल सिकी ने उसे सुझाव दिया था कि डायरी लिखना अकेलेपन और ऊब से लड़ने का सबसे कारगर हथियार होता है लेकिन अपने एक साल के अनुभव से वह बता सकता है कि इससे ज्यादा घातक काम और दूसरा कुछ है ही नहीं। घातक से ज्यादा आत्मघातक।

लिहाजा उसकी डायरी में हरेक दो-चार वाक्यों के बाद 'हत्या' या 'आत्महत्या' जैसे प्रसंग आ जाते थे। डायरी का आखिरी पन्ना लिखते समय उसने अपने मर जाने के बाद अपने आस-पास के लोगों, दोस्तों, माँ-बाप और उस लड़की की प्रतिक्रिया के बारे में सोचा था। सोचते हुए उसे खासा गुस्सा आ गया था, 'क्या महसूस होगा उसे यह जानकर कि अब मैं इस दुनिया में नहीं रह गया हूँ। एक आश्चर्यमिश्रित अफसोस के अलावा शायद ही उसकी कोई अलग प्रतिक्रिया हो। क्या इसी संबंध को लेकर मैं इतना ऊर्जस्वित था कि है कोई दुनिया में एक जिसकी नजर में मैं निकृष्टतम अवस्था में भी सर्वश्रेष्ठ हूँ!'

कमरे में पर्याप्त सन्नाटा था। उसने अपने मन को एकदम एकाग्र किया। उसे लगा कोई चीखकर कह रहा है, 'तुम मर जाओ। मुझे कोई फर्क नहीं पड़ता।' यह आवाज एकदम उसके पास से आई थी या यूँ कहें कि एकदम उसके दिल से। उसने एकदम से डायरी को बंद कर दिया और बड़ी देर तक बिस्तर पर चित लेटे ऊपर चलते पंखे को घूरता रहा। अचानक उसे लगा कि पंखे से एक फंदा लटकता हुआ आकर सीधे उसकी गर्दन पर कस गया है और वह धीरे-धीरे ऊपर उठता जा रहा है। वह लाख छटपटा रहा है लेकिन उस फंदे की पकड़ ढीली ही नहीं हो रही है। वह अपने बचाव के लिए चीखना चाहता था लेकिन उसके कंठ से एक घुटी-सी कराह ही निकली। अपनी पूरी ताकत से उसने अपने हाथों से उस फंदे को अपनी गर्दन से अलग किया और झटके से उठ बैठा, 'उफ कितना भयानक सपना था!' उसी रात उसने तय किया कि वापस बनारस चला जाए।

हालाँकि चलते हुए भी वह इस आत्महत्या के प्रसंग से मुक्त नहीं हो पा रहा था। ट्रेन में सफर करते हुए भी वह इस संभावना पर लगातार विचार कर रहा था कि यदि इस ट्रेन की जबर्दस्त दुर्घटना हो जाए और उसकी बोगी के अधिकांश लोग उसमें मारे जाएँ और वह किसी तरह बच जाए, तो भागकर वह कहीं असम या मेघालय या अरुणाचल प्रदेश चला जाएगा और नाम बदलकर रहने लग जाएगा। तब वह लोगों की प्रतिक्रिया जान पाएगा कि लोग उसके मरने को कैसे लेते हैं

यह सोचते हुए उसके होठों पर एक तिरछी मुस्कुराहट फैल गई, लेकिन फिर वह तुरंत ही सँभल गया। उसे याद आया कि उसके ऐसे मुस्कुराने की अदा को वह लड़की जालिम कहती थी और अक्सर कहा करती थी कि जो लोग ऐसे मुस्कुराते हैं वे किसी के नहीं होते। एकदम पत्थर-दिल होते हैं वे लोग। सुनकर पता नहीं क्यों उसे थोड़ी खुशी ही होती थी और जब कभी भी उसे मौका मिलता वह इस अदा में उसके सामने मुस्कुरा जरूर देता। लड़की तुनककर कहती, 'इस तरह मत मुस्कुराइए प्लीज। मुझे डर लगता है।'

तुम होते हो, मैं होता हूँ, बाकी सब धोखा होता है!

अविनाश को कभी इस बात पर यकीन नहीं हुआ कि वह लड़की उससे डर भी सकती है। वह थी भी पाँच साल बड़ी। एशिया के उस सबसे बड़े आवासीय विश्वविद्यालय में जब अविनाश बी.ए. प्रथम वर्ष का छात्र हुआ तब तक वह एम.ए. क अंतिम वर्ष के अंतिम दिनों में पहुँच चुकी थी। कुछ पुरानी वाकफियत और जान-पहचान के सिलसिले में अविनाश अक्सर उसके छात्रावास 'ज्योतिकुंज' आने-जाने लगा था। वैसे भी वह बनारस में उन दिनों नया था और समय कैसे बिताया जाए जैसी बुनियादी समस्याओं से अक्सर परेशान रहता था। पहले तो लड़की ने उसके यूँ रोज-रोज चले आने पर नाराजगी महसूस की, परंतु जब एक बार अविनाश तीन-चार रोज के लिए कहीं बाहर चला गया तो उसे महसूस हुआ कि दरअसल वह अविनाश की उपस्थिति की आदी हो चली थी। चौथे दिन जब अविनाश उससे मिलने पहुँचा तो वह यकायक बिफर पड़ी, 'कहाँ चले गए थे आप यदि कहीं जाना ही था तो बताकर जाना चाहिए था न यहाँ कितनी परेशानी..'

आगे कहते-कहते लड़की रुक गई थी। अविनाश ने भी कुछ नहीं कहा लेकिन उसी दिन से शायद दोनों के बीच एक-दूसरे को लेकर अधिकारबोध-सा स्थापित हो गया था। अब अविनाश को यदि कहीं बाहर जाना होता तो लड़की को बताकर चला जाता और यदि लड़की को भी किसी शाम को कहीं जाना होता तो वह पहले ही बता देती। एक शाम जब वह उससे मिलने पहुँचा तो वह काफी घबराई और डरी-सी थी। पूछने पर उसने बताया कि कल वह अपनी कविताओं की रिकार्डिंग के बाद जब रेडियो स्टेशन से लौट रही थी तब वह एक अजीब मुसीबत में फँस गई थी। दरअसल बनारस में रेडियो स्टेशन खासे बदनाम मुहल्ले 'मड़वाडीह' में स्थित था। रिकार्डिंग कराकर जब वह निकली तो अँधेरा हो चुका था। अँधेरे की वजह से उसे कुछ दिशाभ्रम-सा हो गया और वह हॉस्टल लौटने से उल्टे रास्ते पर बढ़ गई। वहाँ कुछ ऑटोवालों ने उसे ऐसी-वैसी समझ लिया ओर उसे घेरकर 'कहाँ जाना है चलो हम ले चलते हैं' टाइप फिकरे कसने लगे। तभी संयोग से उधर से चार-पाँच शरीफ लड़के निकले जो एम.बी.ए. के ताजा रंगरूट थे और उस इलाके में अपनी कंपनियों के माल की खपत के सर्वेक्षण के सिलसिले में आए थे। उन्होंने उसे वहाँ से निकाला और सुरक्षित हॉस्टल पहुँचाया। बताते हुए वह अब तक काँप रही थी। पहली बार अविनाश की इच्छा हुई कि वह उसे छू ले, उसकी बाँहों को सहला दे या उसकी पीठ पर हाथ रखकर दिलासा दे दे। चलते समय उसने निहायत बुजुर्गाना अंदाज में कहा, 'आइंदा जहाँ कहीं भी जाना, मुझे बता दिया करना। मैं तुम्हारे साथ चलूँगा!' लड़की ने स्वीकृति में सिर हिला दिया। अविनाश ने उस दिन पहली बार उसे 'तुम' से संबोधित किया था।

संबोधन के इस बदलाव को अविनाश सहज ही लेता लेकिन एक दिन जब उसने देखा कि लड़की का एक सहपाठी उसे 'तुम-तुम' कहकर बात कर रहा था तो उसने तत्काल टोक दिया था, 'राम विनय जी। यह आपने 'तुम-तुम' क्या लगा रखा है मैं तो आपको 'आप' ही कहती हूँ।' राम विनय जी खासे लड़खड़ा गए, 'नहीं मैं तो तुम्हें, नहीं आपको... मित्रवत...'

अविनाश ने अपने आपको खासा चौड़ा महसूस किया। 'देखो, इसके सहपाठी तक इसे 'तुम' नहीं बुला सकते और वह जो कि उससे चार-छह साल पीछे है, उसे सरेआम 'तुम' कह सकता है।' उसने राम विनय के सामने ही उससे कहा - 'अच्छा सरू! तुम बातें करो मैं चलता हूँ...'

'नहीं! नहीं! आप रुकिए न, बातें तो बस हो ही चुकीं। मैं चलती हूँ आपके साथ।'

राम विनय खासे आहत हुए। वे चुपचाप 'हाँ-हाँ ठीक है' कहते हुए निकल गए। लड़की इत्मीनान से अविनाश के साथ रिक्शे में बैठ गई। उस दिन अविनाश ज्यादा आत्मविश्वास और भरोसे से रिक्शे में बैठा। पहले भी वह रिक्शे में उसके साथ बैठता रहा था परंतु थोड़ा सिकुड़कर। कहीं कुछ छू न जाए कि भाव से। आज अविनाश ने महसूस किया कि उसके कंधे जो लड़की के

कंधों से छू रहे थे वहाँ लड़की ने अपने कंधे का दबाव बढ़ा दिया था। उसे हटाने या बचाने की कोई कोशिश नहीं थी।

अविनाश ने महसूस कर लिया था कि लड़की जरूर कुछ बुन रही है और उस बुने जा रहे ताने-बाने में जरूर उसका एक अहम स्थान है। इसका अहसास अविनाश को उसकी बातचीत से भी हो रहा था। एक दिन लड़की ने कहा कि लोग अब उसके यूँ लगातार आने और हमेशा साथ घूमने-फिरने पर ताने कसने लगे हैं।

'तो तुम क्या सोचती हो' अविनाश ने धकड़ते दिल से पूछा।

'कुछ नहीं। कहते रहें लोग। मुझे फर्क नहीं पड़ता। जब हम ठीक हैं तो किसी के कहने से क्या होता है।' लड़की कहीं शून्य में देखती हुई कह रही थी।

'सही बात है। हमें लोगों से ज्यादा अपने-आप पर यकीन होना चाहिए।'

'वही तो। और मुझे अपने आप पर बहुत यकीन है।' लड़की ने शून्य से नजरें हटाईं नहीं।

'तुम मुझसे निश्चिंत रहो। मुझे इस तरह के किसी संबंध में यकीन नहीं है। प्यार-व्यार तो बिल्कुल नहीं।'

'मैं तो शर्त लगा सकती हूँ कि कि मुझे किसी से प्यार नहीं हो सकता।' लड़की पूर्ववत खोई हुई थी।

अविनाश को थोड़ी चुहल सूझी। उसने लड़की का हाथ जबरदस्ती अपने हाथों में ले लिया, 'तो लगी शर्त सौ-सौ रुपये की मुझे लगता है तुम्हें किसी न किसी से तो प्यार हो ही जाएगा।'

'हूँह!' लड़की ने थोड़ा अजीब-सा मुँह बनाया और कहा, 'ठीक है। लेकिन यदि आप कहीं फिसल गए किसी पर तो सौ रुपये मेरे।' वह एक मुस्कुराहट थी जो अक्सर शून्य से लौटने पर आ जाती है।

और एक दिन जब अविनाश उसके साथ अस्सी घाट की सीढ़ियों पर बैठा था और लड़की अपनी परीक्षाओं, अपने कैरियर और अपने भविष्य पर लगातार बोले जा रही थी और अविनाश सिर्फ हाँ-हूँ में जबाव दे पा रहा था कि अचानक लड़की बोलते-बोलते सुबकने लगी। अविनाश चुपचाप उसे देखता रहा। दरअसल वह दो-तीन दिनों से महसूस कर रहा था कि लड़की किसी भी बात पर कभी भी रो सकती है। थोड़ी देर में लड़की संयत हो गई और दोनों चुपचाप हॉस्टल की ओर लौटने लगे। रिक्शा जब महिला छात्रावास के पास रुका तो उससे दोनों उतर आए। लड़की काफी देर तक हॉस्टल के बाहर के चबूतरे पर बैठी रही। वह थोड़ी-थोड़ी देर में हिचकी लेने जैसा सुबक उठती थी। अविनाश चुपचाप उसकी बगल में बैठा था।

तभी लड़की ने अपना चेहरा उठाया और कहा, 'कल मुझसे सौ रुपये ले लीजिएगा। मैं शर्त हार गई।'

'नहीं! इसकी कोई जरूरत नहीं। मैं भी हार गया।' अविनाश ने धीरे से कहा।

लड़की ने अपना चेहरा पोंछा और चुपचाप उठकर हॉस्टल चली गई। अविनाश कुछ देर यूँ ही अकेले चबूतरे पर बैठा रहा। हॉस्टल की ओर जाती हुई लड़की के पैर उसे अपनी जिंदगी की ओर आते महसूस हो रहे थे। थोड़ी देर में वह भी उठकर अपने हॉस्टल की तरफ चला। उसे महसूस हुआ कि हॉस्टल की ओर जाते हुए उसके पैर लड़की की जिंदगी की ओर जार रहे हैं। देखने से विपरीत दिशाओं में जाते हुए भी दोनों एक ही दिशा में आ रहे थे। यह वह दिशा थी जहाँ से सभी दिशाएँ खो जाती हैं।

वह मार्च की गुनगुनी हवा जैसी कोई चीज थी जिसमें अविनाश पागल हुआ जा रहा था, लेकिन उसने देखा कि लड़की जैसे अपने इस निर्णय से किसी सदमे में आ गई थी। वह अविनाश को देखती और उसकी आँखें डबडबा जातीं। कभी-कभी उसके चेहरे पर ऐसी लाचारगी और बेबसी आ जाती कि जैसे वह हर्गिज-हर्गिज नहीं आना चाहती थी इस रास्ते पर। यह उसका रास्ता नहीं था। उसे याद था कि उसके भाई ने अपनी जिद और भरोसे से उसका एडमिशन इस विश्वविद्यालय में करवाया था। नहीं तो एक परंपरागत दक्षिण भारतीय परिवार की तरह उसका परिवार संस्कृत में उसके बी.ए. आनर्स की डिग्री से पर्याप्त खुश था। अब जबकि उसे एक सुयोग्य सुदर्शन वर मिलना ही मिलना था तब भाई ने उसकी प्रतिभा, उसकी काबिलियत पर अपना भरोसा जताया था और बजाय वह किसी के घर, बच्चे, स्टेटस सँभालने के अपना कैरियर अपना भविष्य सँभालने यहाँ थी। यहाँ उसे सँभल-सँभल चलना था, और वह चली भी लेकिन यह अनजाने में यह किस डगर पर बढ़ गई अपनी उस मुस्कुराहट और विवशता में वह इतनी निश्छल और पवित्र लगती कि अविनाश

की इच्छा उसके माथे से अपने होंठ सटा देने की होती। और एक दिन उसने ऐसा किया भी। अविनाश के कमरे में जब एक दिन वह अविनाश की डायरी पर मनोयोग से झुकी थी उसने हठात उसका चेहरा अपने हाथों में भर लिया। लड़की के पूरे वजूद में कंपन हो आया। हल्के काँपते चेहरे पर उसकी मुँदी हुई पलकें। अविनाश की हथेलियों में जैसे उसका चेहरा नहीं किसी खरगोश का बच्चा या कोई सहमा-सा कबूतर था। हथेलियों के सहारे ऊपर उठता उसका माथा जब अविनाश के होठों से छुआ तो जैसे उसके कानों पर बाहर बरस रही किसी बारिश का शोर था, उसका समूचा चेहरा जैसे किसी धीमी आँच में तप रहा था, उसकी साँस तेज चलने लगी थी। अविनाश ने उसके चेहरे को छोड़ दिया। लेकिन वह अपनी तेज साँसों और बंद पलकों के साथ वैसी ही मूर्तिवत बैठी रही। अविनाश भी सिर झुकाए बैठा रहा। उसके मुँह में अभी तक उसके माथे के स्पर्श का स्वाद था। अविनाश चुपचाप कमरे से बाहर निकल आया। बाहर की धूप उसे थोड़ी साँवली-सी लगी और हवा में ठंडक भी। थोड़ी देर में वह फिर कमरे में वापस आया। लड़की वैसी ही डायरी पर झुकी थी। अविनाश को यह ठीक-ठीक पता नहीं चल पा रहा था कि लड़की ने उसके इस कदर चूम लेने को कैसे और किन अर्थों में लिया है। थोड़ी देर चुप रहने के बाद उसने कहा, 'वापस चला जाए।'

लड़की ने चुपचाप डायरी रखी और अपना पर्स उठा लिया, 'हाँ, चला जाए।' वापसी के रास्ते दोनों चुप थे। अविनाश की आँखों में जैसे किसी अदृश्य के देखे जाने का खुमार था तो लड़की किसी खूबसूरत गुनाह के रोमांच में आँखें नीचे किए रही। धीमे से लगभग फुसफुसाती हुई अविनाश की आवाज आई, 'तुमने बुरा तो नहीं माना!'

'किस बात का?' लड़की के होठों पर एक शरारती मुस्कान खेल गई।

'...वो सब ...वो मैंने जानबूझ कर नहीं किया। वो यूँ ही पता नहीं कैसे।'

वह एकदम से खिलखिलाकर हँस पड़ी। लड़की का हॉस्टल आ गया था। उतरते-उतरते बोली, 'अपनी डायरी जरूर पढ़ लीजिएगा।'

लगभग दौड़ते हाँफते हुए अविनाश अपने कमरे में पहुँचा। उसने उसे खूब उलट पुलटकर देखा, डायरी में कहीं कुछ नहीं लिखा था। सिर्फ एक जगह पान के पत्ते का तीर बिंधा हुआ एक चित्र था जिस पर एक बिंदी चिपकी हुई थी, लड़की के माथे की बिंदी। साधारण, चालू और तीसरे दर्जे के उस प्रेम के प्रतीक में न जाने क्या था कि अविनाश की आँखें छलछला आईं। उसने प्यार और अनुराग से उस पान के पत्ते की-सी चित्रकारी को सहलाया। भीगे मन से अविनाश ने डायरी बंद की।

लेकिन अविनाश की दुनिया में अब ढेर सारे शब्द थे। जब वह लड़की से मिलता तो उसके पास बताने के लिए इतना कुछ होता कि वह खुद चकरा जाता कि वह इतना कुछ जानता है। वह लगातार सुर में बोलता जाता। बोलता वह पहले भी था, भाषणों, वाद-विवाद प्रतियोगिताओं में परंतु पहले उसे स्वयं के बोलने में वजन नहीं महसूस होता था। अब तो एक-एक शब्द जैसे वजनदार अभिव्यक्ति का साकार स्वरूप था जिसके भार तले लड़की की पलकें मुँदी जाती थीं। यह एक अजीब फलसफाना मंजर था जिसमें अविनाश के कंधों को हमेशा उस लड़की के सिर का इंतजार था।

जहाँ पेड़ में चार दाने लगे, वहीं दुनिया भर के निशाने लगे...

अविनाश अब उस लड़की के साथ इतना सहज था कि उसकी इच्छा हमेशा उसका हाथ पकड़कर घूमने की होती। अपनी इस इच्छा में वह पैदल ही समूचे बनारस का चक्कर काट आता। वह अस्सी घाट से पैदल चलता हुआ दशाश्वमेध पहुँच जाता। और वहाँ यूँ ही बैठा-बैठा लड़की के बारे में सोचता रहता। लड़की उसके साथ घूमती थी जरूर, लेकिन शाम को। बाकी समय उसकी अन्य व्यस्तताएँ थी। उन परीक्षाओं के बाद उसकी अपनी परीक्षा, जो कि असली परीक्षा थी, शुरू होनी थी। यहीं से उसके आगे की जिंदगी के रास्ते निकलने थे कि वह खूबसूरत रंगोली बने हुए दरवाजे पर किसी रजनीकांतनुमा अपने पति के साथ खड़ी होकर अपनी क्लोपअप मुस्मकान से 'वडक्कम' कहती हुई लोगों का स्वागत करेगी या जिंदगी के ऊबड़-खाबड़ रास्तों को अपने आत्मविश्वास भरे हुए कदमों से समतल बनाते हुए चलेगी। पहले रास्ते के बारे में सोचते हुए उसे उबकाई आने लगती। उसे दूसरे रास्ते पर अविनाश के साथ चलना था, इसलिए अविनाश को अभी अकेले घूमना था।

लाख निजता बरतने के बावजूद उसके समूचे डिपार्टमेंट में शोर था कि सरिता यानी लड़की का स्क्रू ढीला हो गया। राम विनय जी, जो उससे 'तुम' का यानी मित्रवत रिश्ता रखना चाहते थे, इस समूचे प्रकरण को लेकर खासे उत्साहित थे - 'जानते हो मित्र! यह अनाचार तो विभाग को ले डूबेगा। प्रारंभ में तो मुझे यही भान था कि बालक अनुजवत है। लघुभ्राता समान स्नेह का आकांक्षी है, परंतु यह तो परिणयात्मक व्यभिचार है!'

लड़की की सहेलियाँ भी इस समूचे प्रसंग से खासा बौखलाई थीं। पहले तो उन्होंने उसे समझाया। यह सिर्फ आकर्षण है। इतना छोटा है वह तुमसे। देखो लोग क्या कहेंगे वगैरह-वगैरह। अक्सर बजाय खीजने या कुढ़ने के उसके चेहरे पर एक अजीब-सी आश्वस्तिभरी मुस्कान खेल जाती। कभी-कभी वह अविनाश से इन लोगों की शिकायत भी करती। लेकिन इस शिकायत में कोई पीड़ा नहीं होती।

एक दिन तो हद हो गई। दोनों एक पूरा दिन साथ बिताने की गरज से सारनाथ चले आए। मौर्य साम्राज्य के आखिरी और सबसे मजबूत प्रतीकों के खंडहर से गुजरते हुए बुद्ध के आधुनिक पैगोडे वाले परिसर में पहुँच गए। वह शायद उस मंदिर के प्रधान पुजारी का रिहाइशी इलाका था, जो जरा हटकर बना था। खूबसूरत लॉन और फूलों की क्यारियाँ थीं। लोगों की आवाजाही भी इस इलाके में कम थी। लॉन में बैठते ही लड़की का चेहरा खुद ब खुद उसके सीने पर टिक गया। एक सुनहरी धूप-छाँव के बीच लड़की के अस्पष्ट, अस्फुट-से शब्द स्वाति की बूँदों की तरह अविनाश के कानों में मोतियों की शक्ल ले रहे थे, 'लव यू अवि आई लव यू।' अविनाश का हाथ अपने आप उठता हुआ उसकी पीठ पर आ गया। दोनों जैसे समुद्र के बीचोंबीच किसी गुब्बारे में कैद हो गए। तभी गुब्बारे को फोड़ती एक आवाज आई, 'ये क्या हो रहा है यहाँ पर?' दोनों ने चौंककर देखा। चादरधारी एक भिक्षु सीधे उत्तर वैदिक काल से निकलता हुआ साक्षात उनके सामने खड़ा था। अविनाश सकपका गया, लेकिन लड़की ने अपना चेहरा उसके सीने से हटाया तक नहीं।

'देखिए। यह जगह पवित्र है। यह ऐसे कामों के लिए नहीं है।' उत्तर वैदिक होंठ पुनः फड़फड़ाए।

लड़की पूर्ववत बैठी रही। भिक्षु अपनी इस हेठी से तिलमिला गया। वह लगभग काँपता हुआ दोनों के ठीक सामने आ गया। अविनाश की स्थिति एकदम विचित्र लग रही थी। लेकिन भिक्षु को यूँ सामने खड़ा देख लड़की के मुँह से फुसफुसाने जैसी आवाज निकली, 'किस तरह का काम करने की मनाही है यहाँ सारे संसार को प्रेम और करुणा का उपदेश देते फिरते हो और स्वयं इतने अभद्र और लंपट हो।'

'चलिए। चलिए... निकलिए यहाँ से... जाइए...!' वह लगभग चिल्लाने पर उतारू हो गया।

'जा रहे हैं। वैसे भी हम यहाँ घर बनाने नहीं आए हैं।' इत्मीनान से उठते हुए लड़की अविनाश का हाथ थामे छोटे कदमों से लान से बाहर आ गई।

बाहर आकर दोनों वैसे ही निःशब्द हाथ पकड़े चलते रहे... 'काफी बोल्ड हो तुम! भंते की तो घिग्गी बँधा दी तुमने।' अविनाश ने धीरे से कहा, तिरछा मुस्कुराते हुए...

'आपने बोल्ड बना दिया है।' कहते हुए लड़की खिलखिला पड़ी।

शोर यह भी था...

लड़की अपनी स्वतंत्रता और उसकी चमक में हमेशा नहाई हुई-सी लगती। उसकी आवाज उसकी चाल और व्यवहार में एक अनोखी रूमानी अल्हड़ता आ गई थी। उसकी सहेलियाँ जो उसके साथ पढ़ती थीं, वह तो उससे खफा थीं लेकिन उसने इसकी रत्ती भर परवाह किए बिना जूनियर लड़कियों से बेतकल्लुफी होकर दोस्ती कर ली। ज्योतिकुंज छात्रवास में इस तरह की बेतकल्लुफी एक दिलचस्प घटना थी। कहाँ तो तमाम सीनियर दीदियाँ हमेशा हिदायतों की चाबुक लिए खड़ी रहती हैं और कहाँ ये सरू दी तो जैसे उनकी सहेली ही हो गई थीं। जब भी मौका मिलता वे उनके कमरे में चली आतीं और शुरू हो जाता धमाचौकड़ियों का सिलसिला। इतनी प्यारी दीदी। वह उन तमाम लड़कियों से तमाम विषयों पर बातचीत करती। उनके विचार और उनकी जिज्ञासाएँ जानती, उनके फैशन और हेयरस्टाइल पर कमेंट करती और कभी-कभी यूँ ही मुस्कुरा देती।

इन बच्ची सहेलियों में एक लड़की रमोला उसे सबसे ज्यादा अजीज थी। गोरी-चिट्टी, खूबसूरत और बॉर्बीडॉल जैसी लगने वाली इस लड़की की सबसे बड़ी खासियत थी कि वह शिवाजी सिंह की छोटी बहन थी। शिवाजी सिंह विश्वविद्यालय की ठाकुर

राजनीति के सरगना थे। कहने को वे अभी तक रिसर्च स्कॉलर थे। लेकिन किस विभाग में, यह शायद ही किसी को पता था। विश्वविद्यालय में हरेक विभाग में उनकी पैठ थी।

सरिता की पहचान रमोला से बड़ी अजीबोगरीब स्थिति में हुई थी। रमोला के विभाग में फ्रेशर पार्टी थी। बी.ए. प्रथम वर्ष की छात्रा रमोला को उस पार्टी में 'बार्बीडॉल' का खिताब दिया गया था। पार्टी के शोर और घबराहट में बेचारी रमोला को लगा कि लोग उसे बॉबी जैसा कुछ कह रहे हैं। ठेठ ठाकुरों के खानदान में पली रमोला को बॉबी नाम सुनते ही कँपकँपी छूट गई। 80 के दशक में राजकपूर की बॉबी यानी डिंपल कापड़िया की बिंदास और सेक्सी छवि उसके जेहन में घूम गई। देर-सवेर तो भैया को भी पता चल जाएगा कि लोग उसे बॉबी मतलब सेक्सी कहते हैं। अब किसका नाम ले, किसका मुँह पकड़े भैया तो उसी को दोष देंगे और शायद पढ़ना भी बंद करवा दें। तालियों के शोर से किसी तरह पीछा छुड़ाते वह लगभग भागती हुई अपने कमरे में आई और दरवाजा बंद कर हिचकियाँ लेने लगी। लोग परेशान! कहाँ तो इसे मिस फ्रेशर बनने पर खुश होना चाहिए, ट्रीट देनी चाहिए और यह लड़की जार-जार रो रही है। तब वह किसी से चुप नहीं हो रही थी। जब सरिता में कुछ अपनेपन का भाव जानकर सिसकते हुए बोली, 'सरू दी। मैं तो पूरे कपड़े पहनकर वहाँ थी फिर उन लोगों ने मुझे बॉबी क्यों कहा भैया जानेंगे तो...'

सरिता के उसके विभाग के अन्य लड़कियों से जब जानकारी हासिल की तो वह ठठाकर हँस पड़ी। 'पगली! उन लोगों ने तुम्हें बॉबी नहीं बार्बी कहा है। बार्बी डॉल। वह गुड़िया जो दुकानों पर मिलती है बिल्कुल तुम्हारी तरह ही तो होती है।'

रमोला ने एक दिन यह जानकर कि सरू दी को उनके विभाग के कुछ लड़के संस्कृत में चिढ़ाते हैं, चुपके से अपने भैया से कह दिया। और एक दिन जब शिवाजी सिंह की मोटर साइकिल विभाग के सामने रुकी और राम विनय जी को बुलाकर जब भ्रातृवत उन्होंने कुछ समझाया तो वे और उसके मित्रगण पुरुषस्य भाग्यम की जगह अपने भाग्य की खैर मनाने लगे।

अविनाश से यह पूरा वाकया बताते हुए सरिता चहक रही थी। आप देखते अवि, क्या हालत थी राम विनय जी की। अब तो मित्रवत से सीधे भगिनीवत पर उतारू दिखते हैं। शिवाजी भैया को आपने देखा नहीं होगा - क्या खूँखार पर्सनालिटी है। किसी दिन मिलवाऊँगी मैं आपको...।' अविनाश चुपचाप सिर झुकाकर सुनता रहा। शिवाजी भैया के 'खूँखार पर्सनालिटी' के बयान के बीच उसे अपना अस्तित्व गुम-सा लग रहा था। राम विनय का यूँ खिसियाकर सरिता को छेड़ना, अविनाश को असहज लगने के बावजूद एक विजय का अहसास देता था। लेकिन जब आज शिवाजी सिंह ने अपने खूँखार व्यक्तित्व से राम विनय को हड़काया था, अविनाश को जैसे अपनी गर्दन उसके पंजे में महसूस हो रही थी। वह लगभग रुआँसा हो आया।

सरिता ने जब अविनाश को यूँ गुमसुम देखा तो उसे जैसे होश आया। उसने धीरे से उसका हाथ अपने हाथों में लेते हुए पूछा, 'क्या हुआ आपको क्या कुछ गलत हुआ!' अविनाश को लड़की पर तरस आ गया। उसने धीरे से लगभग समझाते हुए अंदाज में कहा, 'देखो सरू, शिवाजी सिंह के बारे में मैं भी जानता हूँ। ऐसे लोग बिना अपने फायदे या मतलब के कुछ भी नहीं करते। आज तुम यदि इनसे कोई मदद लोगी तो कल को ये भी तुमसे कोई फायदा चाहेंगे। इसलिए हमें जहाँ तक हो सके, ऐसे लोगों से दूर ही रहना चाहिए।'

'अच्छा बाबा। मान गई आपकी बात! रहेंगे दूर उनसे।'

लड़की को ज्यादा इंतजार नहीं करना पड़ा। एक दिन जब वह अपने विभाग जाने के लिए निकल ही रही थी कि एक साथ दस मोटर साइकिलें उसके सामने रुकीं। वह घबराकर, चौंककर जब तक सँभलती, शिवाजी सिंह उसके सामने थे।

'सरिता। कैसी हो अब तो वे लोग तुम्हें परेशान नहीं करते?'

'नहीं भैया। अब सब ठीक है...' एक कृतज्ञता भरी आवाज निकली।

'देखो, मैं यहाँ एक खास काम से तुमसे मिलने आया हूँ।' शिवाजी सिंह की आँखें जैसे उसे तौल रही थीं। सारे मोटर साइकिल सवार टकटकी बांधे उसकी ओर देख रहे थे।

'जी... मुझसे...' सरिता की आवाज फँस रही थी।

'हाँ, सुना तो होगा ही कि कोई विदेशी महिला हमारे बनारस में आकर एक फिल्म बनाना चाह रही है।'

'जी वो दीपा मेहता... वाटर...'

'हाँ-हाँ, वही वाटर पानी। साली जिसे भारतीय सभ्यता और संस्कृति की कोई तमीज नहीं है वह हमारे समाज की नंगी तस्वीरें खींचकर विदेशों में हमारे देश का नाम खराब करना चाह रही है।'

'लेकिन वो तो विधवाओं पर...'

'विधवा सधवा कुछ नहीं। पूरा नंगई फैलाने का इरादा है उसका। आखिर हम लोग इस शहर, इस देश में रहते हैं। इसके प्रति कोई फर्ज बनताहै कि नहीं अपना...।'

'जी... बनता तो है... लेकिन...'

'लेकिन-वेकिन छोड़ो अब हम लोगों ने तय किया है कि महिलाओं का एक जुलूस इस फिल्म के खिलाफ निकालेंगे। वैसे महिलाओं का तो इंतजाम हम लोगों ने कर लिया है। लेकिन वे लोग सिर्फ जुलूस में शामिल हो सकती हैं। आखिर कोई जुलूस में भाषण देने वाला भी तो होना चाहिए। हम लोग चाहते हैं कि तुम अपनी दो-चार सहेलियों के साथ कल जुलूस में आओ। एक दस मिनट का स्पीच दे देना।'

'लेकिन भैया... मैं कैसे फिर एक्जाम्स...'

'वो सब छोड़ो। एक्जाम में कितने मार्क्स चाहिए तुम्हें मुझे बता देना।' कहते हुए शिवाजी सिंह ने एक जोरदार ठहाका लगाया। बाकी मोटर साइकिलों पर सवाल हेलमेट के अंदर से वैसे ही ठहारके उस मजबूत ठहाके में शामिल होते गए। ठहाकों की आवाज के साथ ही मोटर साइकिलों के स्टार्ट होने की आवाज भी आई। और उन सब आवाजों के बीच एक महीन किंतु बहुत ठोस लगभग ठनकती सी आवाज सरिता के कानों में पड़ी, 'आना जरूर सरिता। ये मेरी इज्जत का सवाल है।'

शाम को जब अविनाश आया तो वह काफी भरा हुआ था, 'जानती हो सरू। हम कितने पिछड़े और बर्बर शहर में रह रहे हैं। कहने को हम लोकतंत्र में है और अभिव्यक्ति का अधिकार हमारा सबसे बड़ा अधिकार है। लेकिन कहाँ है अभिव्यक्ति का अधिकार एक फिल्मकार इतिहास के किसी कालखंड पर फिल्म बनाना चाह रही है और ये कुछ भाड़े के गुंडे और स्वयंभू मठीधीश इसे भारतीय संस्कृति की रक्षा के नाम पर कलंक साबित कर रोकना चाहते हैं।'

सरिता के कानों पर हथौड़े बज रहे थे। दोनों घाट की सीढ़ियों पर बैठे थे। वह किसी तरह बातचीत का रुख मोड़ना चाह रही थी। वह सुबह की अपनी घटना के बारे में बताना चाह रहती थी। लेकिन अविनाश का रुख देखकर कुछ बोलने का साहस नहीं हो रहा था। सामने गंगा अपनी सहज गति से बहती जा रही थी। उसकी इच्छा हो रही थी कि अभी कोई तेज लहर उठे और दोनों को बहाकर ले जाए। लेकिन अभी मृत्यु की रोमांटिक चाहना से जीवन के यथार्थ का सामना ज्यादा बड़ा सवाल था। और इस यथार्थ में शिवाजी सिंह था, उसकी इज्जत थी। इसी यथार्थ में अविनाश और उसके सोचने का तरीका। सरिता अविनाश के सोचने के तरीके में शामिल हो सकती थी लेकिन...

'लेकिन ये भी तो देखिए कि इतने प्रबुद्ध लोग इसका विरोध कर रहे हैं... आखिर कोई तो बात होगी...' सरिता ने नजरें नीची रखकर ही कहा।

'प्रबुद्ध लोग... कौन हैं ये प्रबुद्ध लोग नाम पढ़ा है तुमने अखबारों में एक तो वही अपने अध्यापक हैं राजनीति शास्त्र वाले, पिछले ही दिनों अपनी छात्रा से छेड़छाड़ के आरोप में गिरफ्तार हुए थे। और... और कुछ हैं गुमनाम से मठों के मठाधीश, किसी पौराणिक ग्रंथों के स्वयंभू भाष्यकार।'

'लेकिन हमें इनका मत भी जानना चाहिए। ये भी लोकतंत्र का जकाजा है।'

'लोकतंत्र का तकाजा हैं कि इनका मत जानना चाहिए। इन्हें विरोध करने का हक है। लेकिन ये विरोध कहाँ कर रहे हैं ये तो अपनी बात मनवा रहे हैं। मुख्यमंत्री से लेकर यहाँ का डी.एम. तक कह रहा है हम इन लोगों से सलाह करके ही कोई अनुमति दे सकते हैं।'

'तो...'

'तो क्या यह सरासर गोरखधंधा है। इन लोगों की क्या कोई संवैधानिक इकाई है कुछ नहीं। एक कोई स्वयंसेवक है, वह निर्माता से इस फिल्म के वितरण का अधिकार माँगने गया था। नहीं मिलने पर ही उसने यह सब बखेड़ा किया है। और जब तमाम लोग उसमें अपनी रोटियाँ सेंक रहे हैं।'

'लेकिन आप यह इतने दावे से कैसे कह रहे हैं?'

'सिर्फ मैं ही नहीं कह रहा हूँ। इस शहर के वाकई जो प्रबुद्ध लोग हैं वो तमाम लोग इस बात को उठा रहे हैं। कल इसी गंगा के तट पर तमाम बुद्धिजीवी काशीनाथ सिंह, बच्चन सिंह, ज्ञानेंद्रपति

आदि इकट्ठा हो रहे हैं, इसका विरोध करने के लिए हम लोग भी आएँगे।'

सरिता अचानक झल्ला गई, 'कोई नहीं आ रहा है यहाँ। मेरी परीक्षाएँ नजदीक हैं। और आप भी अपनी पढ़ाई पर ध्यान दीजिए।'

'कैसी बात बर रही हो सरू, यह कोई राजनीति नहीं है। यह सच के पक्ष में खड़ा होना है। और आज यदि हम बोलने से बचेंगे तो भविष्य में हम सदा के लिए गूँगे कर दिए जाएँगे।'

सरिता निरुत्तर थी। एक आवेग में थी। आखिर अविनाश की इन्हीं अदाओं की तो वह दीवानी थी। लेकिन आज वह खुलकर उसकी तारीफ तक नहीं कर पा रही थी। उसके अपने मन का चोर उसे आज ठीक से नजरें नहीं मिलाने दे रहा था। लौटते समय उसने गौर से गंगा के पानी को देखा। इतनी गंदी होती जा रही है यह। उसे 'मिलिंद प्रश्न' का वह प्रसंग याद आ गया। जब भिक्षु नागसेन राजा मिलेंडर से जीवन की निरंतरता को व्याख्यायित करते हुए पूछता है, राजन क्या यह वही जल है जो एक क्षण पहले था?

'नहीं भंते। वह तो बह गया।'

'क्या यह वही जीवन है जो कल था सरिता ने सोचा...

बहुत देर के बाद भी उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

पैरों के पास की हरी घास को दरोगा का भैंसा चर गया।

रात भर सरिता सो नहीं सकी। भयानक और बुरे सपनों की आवाजाही में करवटें बदलती रही। कभी वह देखती कि शिवाजी सिंह उस बौद्ध भिक्षु का चीवर पहने हुए संस्कृत या पालि में कोई भयानक-सा मंत्र उचार रहे हैं। अचानक से उनकी नजर सरिता पर पड़ती है। इस पवित्र चैत्य भूमि में तुम्हारी हिम्मत कैसे हुई घिघियाती हुई-सी उसकी आवाज निकली है... जी मैं तो आपके कहने से, नहीं मेरे कहने से नहीं। परंपरा की रक्षा के नाम पर... फिर उनका चेहरा तेजी से बदलता हुआ एकदम भयावह हो जाता है। परंपरा की रक्षा के नाम पर तुम्हें मरना होगा। सरिता भागकर नदी में कूद पड़ती है। पीछे-पीछे भैंसे पर सवार चीवर पहने शिवाजी सिंह, उसके मुँह से अजगर की तरह आग की लपटें निकल रही थीं। उस आग से नदी के पानी में भी आग लग गई। सरिता पूरी ताकत से बचाओ-बचाओ चिल्लाना चाह रही थी लेकिन उसने महसूस किया कोई उसकी गरदन को कसकर अपने पंजे में दबाए हुए है। घबराकर उसने अपनी आँखें खोलीं। वहाँ कोई नहीं था। वहाँ सिर्फ आने वाली अनहोनी की आशंका थी। सुबह-सुबह ही शिवाजी सिंह आ धमके थे। अपने लाख बचना चाहा, 'भैया। कोई जाने को तैयार नहीं हो रही है।' शिवाजी सिंह ने आश्वस्त किया कि चिंता की कोई बात नहीं, सिर्फ आधे घंटे में वापस हो आना। उन्होंने यह भी बताया कि भाषण देने के लिए तो आधा दर्जन नेत्रियाँ तैयार हैं, लेकिन इससे वो तमाम लोग अपनी राजनीति साधने के फिराक मे लग जाएँगे। चूँकि यह भारतीय संस्कृति की रक्षा का मामला है, इसलिए वे नहीं चाहते कि कोई नेताबाजी इसमें हो। इसमें एक आम भारतीय नारी की आवाज होनी चाहिए। इसलिए वे सरिता का इतना जोर दे रहे हैं। झिझकते और सहमते हुए सरिता उनके साथ जाने को तैयार हो गई। चलते समय वह सोच रही थी, इस आधे घंटे को मैं समूची जिंदगी से नोंच डालूँगी। जब शिवाजी सिंह की मोटर साइकिल स्टार्ट हुई और वह थोड़ी सँभलकर पीछे बैठी तो उसके सीने में एक हूक-सी उठ रही थी। अविनाश प्लीज मुझे माफ कर देना। मैं तुरंत वापस आ जाऊँगी...।

कचहरी पर धरना था। चालीस-पचास महिलाएँ वहाँ इकट्ठा थीं। उनका रूप-रंग देखकर लग रहा था जैसे उन्हें दिहाड़ी पर बुलाया गया हो। सरिता को इन्हीं महिलाओं को लेकर भारतीय संस्कृति की रक्षा करनी थी। शिवाजी सिंह उसे उन भारतीय संस्कृति रक्षा दल के सामने खड़ा कर खुद ज्ञापन टाइप कराने चले गए। सरिता को कुछ समझ नहीं पड़ रहा था कि वह क्या करे। सामने स्लेट की तरह भावहीन चेहरा लिए, हाथ में बैनर थामे वे महिलाएँ खड़ी थीं जिनके सामने उसे भाषण देना था। वह चाहती थी कि शिवाजी सिंह के लौटने से पहले वह अपना दायित्व खत्म कर ले। गला खखारकर उसने कहना शुरू किया, 'बहनो, आज हमारी संस्कृति पर...'

तभी उधर से एक लंबा चौड़ा छह फुट का दरोगा आकर उसके सामने खड़ा हो गया। सरिता ने देखा कि सड़क के उस पार आठ-दस पुलिस वाले खड़े हैं और कौतुक से उसकी ओर ताक रहे हैं।

'क्या चल रह है यहाँ धरना जुलूस। आपको पता नहीं शहर में 144 लागू है और यह सब करना गैरकानूनी है।'

'जी मैं तो...'

'क्या मैं तो आप भाषण दे रही थीं। इन महिलाओं को लेकर प्रदर्शन कर रही हैं। अभी महिला पुलिस आती ही होगी। आप तमाम लोगों को शांति भंग करने के प्रयास में गिरफ्तार किया जाता है।'

सारे पुलिस वाले उस मजमे के इर्द-गिर्द खड़े हो गए थे। सरिता को कुछ समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या जवाब दे। वहाँ जमा महिलाएँ आपस में खुसुर-फुसुर कर रही थीं। लेकिन उनमें कोई हड़बड़ाहट नहीं थी। शायद उन्हें पहले से ऐसी स्थिति के बारे में पता था।

'देखिए सर। मैं तो यहाँ यूनीवर्सिटी में पढ़ती हूँ। वो तो शिवाजी भैया...' वह लगभग रुआँसी हो उठी। उस छह फुटे दरोगा ने एक बाज नजर से सहमी सरिता को देखा।

'आपको जो भी कहना हो थाने चलकर कहिएगा।'

'थाना' सरिता के हाथ-पैरों में कँपकँपी हो आई। उसके खानदान में आज तक किसी ने थाने का मुँह नहीं देखा था। भैया की कल्पना करके ही वह सिहर उठी। क्या बीतेगी उन पर। वह सिसक पड़ी। दरोगा और पैनी नजरों से उसे घूरता रहा। तब तक उसे सामने से शिवाजी सिंह आते दिखे। वह लपककर उनके पास पहुँची।

'भैया ये लोग क्या कह रहे हैं?' शिवाजी सिंह उसे लेकर थोड़ा किनारे आ गए।

'देखो सरिता यहाँ प्रेस वाले भी हैं। तुम यदि इस तरह करोगी तो लगेगा जैसे सारा मामला अरेंज्ड है। यह तो रूटीन मामला है। 107 का केस भी कुछ होता है क्या?यहाँ से थाना और फिर छुट्टी।'

'नहीं भैया! मैं थाने नहीं जाऊँगी। प्लीज मुझे बचा लीजिए। मैं आपके पाँव पड़ती हूँ।' सरिता लगभग गिड़गिड़ाने लगी। उसकी ऐसी हालत देखकर शिवाजी सिंह भी घबरा गए, 'तुम तो बेइज्जत करा दोगी। खैर, रुको मैं देखता हूँ।'

थोड़ी देर तक वे उस दरोगा से एकांत में बतियाते रहे। फिर दरोगा उसके पास आया और अपनी भारी और डरावनी आवाज को भरसक मुलायम करता हुआ बोला, 'आप घबराइए नहीं। अभी महिला पुलिस नहीं आई है। मैं आपको छोड़ दूँगा! लेकिन आप पढ़ी-लिखी होकर...'

सरिता को अपने समूचे शरीर में उस दरोगा की आँखें चुभती-सी महसूस हो रही थीं।

'जी, मुझसे गलती हो गई। अब आइंदा...'

दरोगा अपनी डायरी निकालता हुआ बोला, 'अच्छा चलिए, अपना नाम-पता बताइए।'

सरिता ने घबराकर शिवाजी सिंह की तरफ देखा।

'घबराइए मत। यह सिर्फ मेरी पर्सनल इन्फार्मेशन के लिए है। आखिर मैं भी कानून के अंदर ही काम करता हूँ। कल को कोई दिक्कत हो जाए...।'

'बात दो सरिता। कोई बात नहीं, दरोगा साब अपने ही आदमी हैं।' शिवाजी सिंह ने उसे हौसला दिलाया।

सरिता की इच्छा हुई कि वह शिवाजी सिंह का मुँह नोंच ले। आप तो हैं ही। आप ही के कारण तो आज मैं...

अपना नाम-पता उस दरोगा को बताकर जब वह शिवाजी सिंह की मोटर साइकिल पर बैठी तो उसे महसूस हुआ कि सीट पर उसकी बेजान लाश रखी है। आत्मा तो उसकी उस डायरी में बंद हो गई जिसे दरोगा अपनी मूँछों में हँसते हुए पढ़ रहा था।

विश्वविद्यालय के सिंह द्वार पर ही उसे अविनाश दिख गया। वह वहीं उतर गई। अविनाश उसे देखकर उसके पास आ गया। उसने सवालिया नजरों से सरिता की तरफ देखा।

'अविनाश, ये शिवाजी हैं।' सरिता की एक थकी-सी आवाज निकली, 'और ये अनिवाश हैं। मेरे ही शहर के हैं।' थोड़ा अटकते हुए उसने कहा।

'अच्छा!! अच्छा! किस विभाग में हो कोई दिक्कत हो तो बताना।' बिना जवाब सुने धुआँ उगलती उनकी बाइक स्टार्ट हो गई। सरिता ने महसूस किया कि वह छूटा हुआ धुआँ उन दोनों के बीच बहुत ठोस शक्ल में उपस्थित था।

'कहाँ गई थी उनके साथ?' उसकी आवाज काँप रही थी।

'ओफ्फोह! आप भी। रमोला की तबीयत खराब थी। हॉस्पिटल में है बिचारी। उसी को देखने गई थी।' सेकेंड के सौवें हिस्से में सरिता ने सोच लिया था। अविनाश का सिर भन्ना गया। वह अभी उसे ढूँढ़ने जब उसके छात्रावास गया था तो रमोला ने ही

उसे बताया था कि दीदी नहीं है अभी। सुबह ही निकली है। फिर वह अस्पताल में कैसे सरिता साफ झूठ बोल रही थी लेकिन वह उस पर यह जाहिर करके उसे अपराधबोध में नहीं डालना चाह रहा था। उसने यूँ ही पूछ लिया, 'कैसी तबीयत है?'

लड़की को लगा वह रमोला के बारे में पूछ रहा है, बोली, 'ठीक है। जल्दी छुट्टी मिल जाएगी।

अविनाश ने भी उसे जल्दी छुट्टी दे दी। कहा, तुम चलो मैं शाम को मिलता हूँ।

अगले दो-तीन दिनों तक वह लड़की से नहीं मिल पाया। कुछ तो उसकी व्यस्तताएँ ओर कुछ वह सवाल कि आखिर उसने उससे झूठ क्यों बोला। शहर के हालात भी ठीक नहीं थे। चारों ओर संस्कृति की रक्षा का बोलबाला था। एक छात्र संगठन ने 'वेलेंटाइन डे' मनाने पर प्रेमियों को गधे पर बिठाने का ऐलान कर रखा था। ऐसे में सरिता के साथ घाट पर बैठना भी मुनासिब नहीं था। चौथे दिन जब वह अपनी इन्हीं उधेड़बुनों में था, तो सरिता लगभग परेशान-सी उसे ढूँढ़ते हुए लाइब्रेरी में आई... 'कहाँ हैं आप मुझे पता था आप यहीं मिलेंगे।'

अविनाश ने उसे लाचारगी से देखा। मैं कहाँ हो सकता हूँ मैं तो तुम्हारे साथ ही हूँ हमेशा।

दोनों आमने-सामने की टेबल पर बैठे। तभी अचानक सरिता हड़बड़ाकर उठ खड़ी हुई! '...आप बैठिए। मैं अभी आई।'

बाहर वही दरोगा खड़ा था। उसने बताया कि वह उसे ढूँढ़ते हुए हॉस्टल आया था और वहीं से पता चला कि वे लाइब्रेरी गई हैं तो यहाँ तक आ गया कि चलो मिलते ही चलते हैं।

लड़की की इच्छा हुई कि वह पूछ ले कि क्यों मिलना चाहते हैं परंतु झिझक और आतंकवश चुप हो गई।

वह दरोगा आराम से एक कुर्सी खींचकर बैठ गया। वह इतना बदतमीज था कि उसने लड़की से बैठने तक के लिए नहीं कहा। थोड़ी देर बाद जब अविनाश सरिता को ढूँढ़ते हुए मुख्य कक्ष में आया तो उसे इस किस्म की बेहूदगी बड़ी विचित्र लगी। एक छह फुटा आदमी आराम से टाँग पर टाँग चढ़ाकर बैठा था और सरिता यूँ ही खड़ी-खड़ी उसे एंटरटेन कर रही थी। अविनाश काफी देर तक किताब ढूँढ़ने के बहाने कनखियों से अदृश्य-सा दृश्य देखता रहा। उसे पता था कि सरिता भी उसके देखने और खीझने को नोटिस कर रही है, लेकिन उसकी तरफ से कोई संकेत नहीं मिल पा रहा था।

दरोगा ने लड़की को बताया कि महिला दरोगा के सामने वो सारी गिरफ्तार महिलाएँ यह बयान दे रही थीं कि उनकी नेता कोई विश्वविद्यालय में पढ़ने वाली छात्रा है। वह तो तफ्तीश पर उतारू हो गई थीं, लेकिन उसके कहने से बात सँभल गई नहीं तो आज उसे काफी परेशानी उठानी पड़ती। दरोगा ने यह भी कहा कि उसे हम जैसे दोस्तों के होते हुए किसी किस्म की चिंता नहीं करनी चाहिए। लड़की खिसियानी हँसी हँसते-हँसते थक चुकी थी। वह इतनी बार थैंक्यू कह चुकी थी कि अब उसे यह शब्द बहुत अर्थहीन और खोखला-सा लग रहा था।

दरोगा ने फिर उसमें जोड़ा कि केवल थैंक्यू कहने से काम नहीं चलेगा। उसे इस एवज में कम-से-कम कॉफी तो ऑफर करनी ही चाहिए। लड़की अजीब मुसीबत में थी। हाँ कह कर वह अविनाश को रुसवा नहीं करना चाहती थी और न कहने दरोगा नाराज हो जाता।

'ठीक है। मैं किताबें जमा करवा के आती हूँ। आप बैठिए।'

'हाँ-हाँ, ठीक है। आप आराम से आइए।'

किताबें समेटते हुए वह थोड़ी देर के लिए अविनाश के पास रुकी। उससे कहा कि वह शाम को हॉस्टल आ जाए। अविनाश पूछना चाहता था कि क्या हुआ कहाँ जा रही हो कौन है वह आदमी, लेकिन सरिता जल्दी-जल्दी किताबें समेटकर निकल गई।

'कोई खास परिचित है क्या वह लड़का?' लाइब्रेरी से बाहर निकलते हुए दारोगा ने कुछ ऐसी आवाज में पूछा कि यदि वह हाँ कह देगी तो आज कुछ अनर्थ हो जाएगा।

'नहीं। ऐसे ही मेरे ही शहर का है।' सरिता ने जब यह कहा तो उसे महसूस हुआ कि उसके शरीर की आखिरी बूँद तक निचुड़ चुकी हो।

अविनाश अजीब उलझन में था। कुछ अघट-सा घट रहा था उसके साथ। कोई अनहोनी थी तो उसके साथ हो रही थी। कोई अदृश्य शक्ति जबर्दस्ती उसे किसी खेल में शामिल किए जा रही थी, जिस खेल के नियम उसे पता नहीं थे और कोई जबर्दस्ती उससे ऊँचे दाँव लगवा रहा था जिसमें उसका हारा जाना तय था।

सरिता अब उससे मिलते समय अधिकांश समय नजरें नीची किए रहती। उस छह फुटे के बारे में उसने बताया कि वह एक दरोगा है, जिसने उसे एक विपरीत परिस्थिति से बचाया था। उस विपरीत परिस्थिति की बाबत उसने बताया कि एक बार रमोला और वो गोदौलिया गए थे। वहाँ कुछ लड़के रमोला को छेड़ने लगे तो इस दरोगा ने वहाँ पहुँचकर उन लोगों को बचाया था। रमोला डर गई थी कि शिवाजी भैया को पता चल गया तो वो उसकी पढ़ाई छुड़वा देंगे। दारोगा रिपोर्ट लिखने पर अड़ा हुआ था। लेकिनी उसकी रिक्वेट मानकर उसने मामले को रफा-दफा कर दिया। अविनाश जानता था कि यह सब झूठ है। उसने कहा भी कि इसमें शिवाजी सिंह रमोला की पढ़ाई क्यों छुड़वा देंगे। आखिरी इसमें रमोला की क्या गलती है उसे शिवाजी सिंह से साफ-साफ बात करनी चाहिए।

जवाब में सरिता ने इतना ही कहा, 'आप शिवाजी सिंह को नहीं जानते।'

अविनाश वाकई शिवाजी सिंह को नहीं जानता था। वह सरिता को भी ठीक से कहाँ जानता था वह सरिता के उस, इंजन ड्राइवर भाई को भी नहीं जानता था, जो आगे सरिता की पढ़ाई के डिब्बे को खींचने में असमर्थ था। वह यह भी नहीं जान पाया कि एक असुविधाजनक स्थिति से निकालने वाला वह दरोगा कब सरिता के लिए सुविधाओं का बायस हो गया। रेलवे रिजर्वेशन को या सिनेमा की टिकट, दुकानों में खरीद पर डिस्काउंट का मामला हो या किसी कार्यक्रम का पास उपलब्ध कराना हो, वह दारोगा एक कप कॉफी पीने के नाम पर चुटकियों में कर सकता था। अविनाश उसे समझाना चाहता था। वह उसके सामने बैठे हुए कॉफी के कप में उसका खून पीता है, यह ठीक नहीं है। जवाब में सरिता ने कहा कि वह बेकार ही ऊल-जलूल सोचा करता है। वह दारोगा तो शादी-शुदा है।

सरिता कई-बार अविनाश से भी साथ कॉफी पीने चलने को कहती। वह दृढ़ता से मना करता। सरिता और खीझ जाती।

अविनाश उससे बातें करता तो उसे खुद महसूस होता जैसे वह मीलों दूर से बात कर रहा हो। वह दारोगाओं के धूर्तता व क्रूरताओं के किस्से सुनाना चाहता लेकिन उसे महसूस होता, ऐसा करके स्वयं की कमजोरी और बुजदिली ही जाहिर करेगा। वह किसी से गुहार करना चाहता था कि उसे बचाया जाए। लेकिन किससे वह समझ नहीं पाता था। उसे अपने हाथों में ताकत महसूस होती थी और वह आवाज जिसे उसे सबसे ज्यादा यकीन था, इतनी खोखली व बेजान लगती कि अपने आप तक को आश्वासन नहीं दे पाता। इस समूचे समय सिर्फ उसके पास पैर थे जिसको घसीटता हुआ अपने हॉस्टल से सरिता के हॉस्टल तक आता था। और उसे हमेशा महसूस होता था कि एक दिन वह दारोगा की बाइक से कुचला जाएगा।

सरिता उससे अब सिर्फ अपनी तकलीफों के बारे में बात करती। वह कोई रूहानी या रूमानी तकलीफें नहीं थीं। उसकी परीक्षाएँ खत्म हो चुकी थीं। अब वह जल्दी से अपने पैरों पर खड़ा होना चाहती थी। उसे अपने पैरों से बहुत काम लेना था, उन पर खड़ा होना था और बहुत दूर तक जाना था, इसलिए वह अविनाश के साथ घिसट नहीं सकती थी। रिक्शा एक सुस्त सवारी थी, जिस पर चढ़कर वहाँ तक नहीं पहुँचा जा सकता था जहाँ उसे जाना था।

उसने एक दिन बताया कि उसे जखनियाँ या जखनी - ऐसे ही किसी जगह जाना है। वहाँ शिवाजी सिंह के किसी रिश्तेदार का कोई कॉलेज है। वहाँ उसकी अस्थायी नियुक्ति हो गई है। अविनाश को समझ में आ रहा था कि उसकी स्थायी छुट्टी हो रही थी। उसने उससे कुछ कहा नहीं। एक दिन शाम को जब उससे मिलने गया तो 'गुनाहों का देवता' लेता गया। कभी सरिता ने कहीं कहा कि उसे यह उपन्यास बेहद अजीज है। और उसे पढ़कर घंटों रोई थी। सरिता ने वह उपन्यास देखा और वापस करती हुई बोली, 'जिंदगी उपन्यास नहीं होती।' अविनाश ने सुना - अच्छा प्रयास है लेकिन अब मुझ पर असर नहीं होगा।

सरिता के जाने के बाद वह यूँ ही कुछ दिनों तक शहर में भटकता रहा। वह उन सारी जगहों पर यूँ ही निरुद्देश्य बैठा रहा, जहाँ कभी सरिता के साथ आया था। एक दिन सारनाथ भी हो आया, और उसी लॉन पर देर तक बैठा रहा, जहाँ से भिक्षु ने उन्हें भगाया था। काफी देर तक बैठे रहने के बावजूद उसे वहाँ से भगाने कोई नहीं आया। उसे कहीं से कोई नहीं भगा रहा था, लेकिन उसे लग रहा था कि बचना है तो भागना है। और ऐसे ही एक दिन जब उसकी बी.ए. की परीक्षा खत्म हुई तो वह बचने के ख्याल से भागा और भागकर दिल्ली में आ गया। लेकिन शहर बदलने से स्मृतियाँ नहीं बदल जातीं।

इक जख्म भर गया था... इधर ले के आ गया

बनारस लौटने पर अविनाश की इच्छा केवल उसे एक बार देख भर लेने की थी। उसके एक पुराने दोस्ते सतीश राय ने उसे बताया कि पिछले दिनों वह लंका में दिखी थी। किसी के साथ मोटरसाइकिल पर जाती हुई। वह शाम को यूँ ही निरुद्देश्य लंका पर टहलता रहा। हरेक दुकान के सामने ठहरकर घूरता रहा कि वह अचानक यूँ ही दिख जाए तो कैसा रहे। लेकिन वैसा कुछ हुआ नहीं। आखिर थककर पहलवान की चाय-दुकान पर बैठ गया। बनारस के दिनों में यही उसका अड्डा था जहाँ वह अपने दोस्तों-परिचितों से मिलता था। आज भी उसे अपने कुछ परिचित इधर-उधर दिखाई दे रहे थे। लेकिन किसी से भी हुलसकर मिलने की उसकी इच्छा नहीं हो रही थी। पहलवान ने उस पर एक उचटती-सी दृष्टि डाली, 'का गुरू! बहुत दिन बाद, कहीं बाहर रहत हउव?' उसने सिर्फ स्वीकृति में सिर हिला दिया।

'देखो! एक तोहार पुरान संगी आवत हवन।'

उसने चौंककर देखा। पॉलिटिकल साइंस वाले तिवारी जी थे। तिवारी जी वाकई उससे ऐसे मिले जैसे जन्मों के बिछुड़े हों। यहाँ रहते हुए तिवारी जी से उसकी कोई वैसी घनिष्ठता नहीं थी, लेकिन दूरियों ने शायद दोनों को नजदीक ला दिया था। तिवारी जी ने कहा, 'अरे गुरू। वो लड़की जिसके साथ आप घूमते थे आजकल यहीं है। त्रिवेणी हॉस्टल में। परसों मिली थी हमसे। थीसिस जमा करवाना है उसको।'

अविनाश का दिल धड़कने लगा। तिवारी जी लगातार बोले जा रहे थे। 'हमने पूछा भी कि आजकल अविनाश कहाँ है तो कुछ जवाब नहीं दिया उसने। कउनो झगड़ा-उगड़ा'

तिवारी जी रौ में बोले जा रहे थे। उनके साथ एक और लड़का था जिसे अविनाश पहचानता न था। वह उत्सुकता से अविनाश को देख रहा था। उसने एक बार पूछा भी कौन लड़की तिवारी जी?

'अरे एक हैं संस्कृत में। रिसर्च स्कालर थीं। अभी कहीं पढ़ाती हैं।'

'कौन सरिता दी'

अविनाश का चेहरा फक पड़ गया। यह कौन लड़का है और उसको कैसे जानता है

'हाँ-हाँ, वही।'

'अरे मैं तो उनको जानता हूँ। वो शिवाजी भैया से परिचित हैं न रमेंद्र भैया। वही तो आजकल उनका थीसिस टाइप करावा रहे हैं अभी ही तो गई हैं हॉस्टल।'

अविनाश जल्दी से जल्दी वहाँ से उठ जाना चाह रहा था। लेकिन तिवारी जी न जाने आज किस जन्म का बदला लेने पर उतारू थे।

'तो यह तो अच्छी बात है। इनसे भी मिल लीजिए आप ये अविनाश हैं। आपकी सरिता दी के भूतपूर्व प्रेमी।'

अविनाश अब झटके से उठ खड़ा हुआ, 'अच्छा तिवारीजी, अब चलूँगा मैं। कल फिर मिलते हैं।'

वह तेजी से वहाँ से बाहर निकल आया। उसे लगा कि वह लड़का भौंचक होकर उसे घूरता रहा था।

उसका दिल धड़क रहा था। त्रिवेणी हॉस्टल! वह यहीं है। चंद कदमों के फासले पर। उसे त्रिवेणी हॉस्टल का फोन नंबर याद था। कुछ देर यूँ ही उधेड़बुन के बाद आखिरकार उससे रहा नहीं गया। धड़कते दिन से उसने नंबर मिलाया।

'हैला! सरिता सारस्वत से बात करनी है! जी रूम नं तो पता नहीं। संस्कृत की रिसर्च स्कालर हैं।'

थोड़ी देर में सरिता फोन पर थी।

'अच्छा। आप कब आए... कैसे हैं?'

'ठीक हूँ। मुलाकात हो सकती है क्या?' उधर थोड़ी देर तक चुप्पी छाई रही, 'अच्छा ठीक है। कल चार बजे हॉस्टल गेट पर जा जाइए। कॉल लगाने की जरूरत नहीं है। मैं खुद ही आ जाऊँगी। देर मत कीजिएगा। ठीक चार बजे।'

सारी रात अविनाश को नींद नहीं आई। सुबह से लेकर चार बजे तक का समय उसे चार दशक जितना लंबा लगा। वह पौने चार बजे ही त्रिवेणी हॉस्टल के बाहर था।

ठीक चार बजे सरिता गेट से निकलती दिखाई दी। वह मुस्कुराया वही तिरछी मुस्कान। जबाव में सरिता और चौड़ा मुस्कुराई। लेकिन यह क्या वह उसकी तरफ न आकर सड़क पार कर किसी तरफ जा रही है

वहाँ मोटर बाइक पर एक दुबला-पतला लड़का बैठा था। वहाँ जाकर सरिता और ज्यादा मुस्कुराई।

'यहाँ आइए। आइए न।' वह अविनाश को ही बुला रही थी।

वह धड़कते दिल और बुझे कदमों से वहाँ तक पहुँचा। सरिता लगभग खिलखिलाने की हद तक मुस्कुरा रही थी।

'इनसे मिलिए। ये हैं रमेंद्र। जैसे आप मेरे भूतपूर्व हैं, वैसे ही ये अभूतपूर्व मित्र हैं। समूची थीसिस चार दिनों में ही इन्होंने टाइप करवा दी है। ...और ये ही अविनाश हैं।'

अविनाश के कान जल रहे थे। रात में तिवारी जी के साथ जो लड़का था वहीं यह भूतपूर्व-अभूतपूर्व वाली बात उठी थी। वह सफाई देना चाहता था लेकिन उसकी जुबान सूख चुकी थी।

रमेंद्र नाम के उस लड़के ने अपना हाथ बढ़ाया। 'अरे अविनाश जी, सरिता जी अकसर आपकी बातें करती हैं। काफी दिनों से आपसे मिलने की इच्छा थी।' हाथ मिलाते हुए अविनाश के हाथ से पसीना निकल रहा था। वह लाचारगी और बेचारगी में दोनों को देख रहा था। थोड़ी देर तक रमेंद्र नाम का वह शख्स अनिवाश से उसके पढ़ाई-लिखाई कैरियर के बारे में पूछता रहा। वह सिर्फ हाँ-हूँ कर पा रहा था। उसका चेहरा इतना बेचारा और दयनीय लग रहा था कि सरिता को कहीं न कहीं अपराधबोध-सा होने लगा।

थोड़ी देर में रमेंद्र ने कहा, 'ठीक है सरिता जी। चलिए मैं आपको कंप्यूटर सेंटर तक छोड़ देता हूँ। अंतिम अध्याय का प्रूफ देख लीजिए।' अविनाश का कलेजा मुँह को आ गया। उसको एकदम यकीन था कि लड़की अभी मोटर साइकिल पर बैठेगी और उसके मुँह पर धुआँ छोड़ती हुई अपने सैंडल से उसके कलेजे को मसलते हुए निकल जाएगी। लेकिन तभी लड़की ने कहा, 'नहीं रमेंद्र जी। मैं खुद चली जाऊँगी वहा। मैं थोड़ी देर तक इनके साथ हूँ। मैंने बुलाया है इन्हें।'

अविनाश को जैसे अपने कानों पर यकीन नहीं हुआ। उसकी इच्छा हुई कि वह लड़की से कहे कि वह नहीं जानती कि आज उसने उसके ऊपर कितना बड़ा उपकार किया है। इस एक वाक्य के लिए जो अभी उसने इसके समर्थन में कहा है वह जिंदगी भर उसको अपने हसीन सहारे के रूप में याद करता रहेगा।
अविनाश ने गौर किया इस एक वाक्य से रमेंद्र नाम के उस अभूतपूर्व मित्र के चेहरे पर धुआँ फैल गया। उसकी आवाज अजीब रूप से कसैली हो गई।

'ठीक है सरिता जी। तो मैं चलता हूँ। आप भी अब अपने पुराने दोस्त को ताजा कीजिए।'

बिना हाथ मिलाए ही वह मोटरसाइकिल स्टार्ट करता हुआ चला गया। उसका जला हुआ चेहरा अविनाश को हर्षा गया। वह वैसे ही तिरछा मुस्कुराता हुआ सरिता से मुखातिब हुआ। 'कैसी हैं आप?'

सरिता ने संबोधन के बदलाव पर कोई गौर नहीं किया और न ही उस मुस्कान के तिरछेपन की कोई नोटिस ली।

'चलिए चला जाए'

'कहाँ'

'यूँ ही बाजार तक। मुझे कुछ काम है।'

दोनों साथ चल रहे थे, परंतु सिर्फ कदमों में। साथ चलने जैसी कोई बात उनमें नहीं थी। साथ चलने जैसी क्यूँ कोई बात करने जैसी कोई बात भी नहीं थी। अविनाश यूँ ही कोई गाना गुनगुनाने लगा। लड़की ने बरज दिया - सड़क पर चलते हुए गाना नहीं गाना चाहिए। अविनाश को याद था यह गाना अकसर लड़की गुनगुनाया करती थी। 'रहे न रहे हम महका करेंगे बन के कली बन के सबा...'

वह एक हैंडबैग या थैले की तरह बाजार में लड़की के साथ डोलता रहा। लड़की बार-बार उसके रोजगार के बारे में पूछ रही थी। वह बार-बार बता रहा था कि वह यूँ ही समय काट रहा है। लड़की अपने कॉलेज के अनुभव बता रही थी। वह बेमन से उसे सुन रहा था।

लौटते हुए अविनाश को शरारत सूझी। वह लपककर एक रिक्शे में चढ़ गया। लड़की एकदम से अकबका गई।

'रिक्शे की क्या जरूरत है, पैदल चल सकते हैं।'

'नहीं, मैं थक गया हूँ। वैसे भी दिल्ली में पैदल चलने की आदत छूट जाती है।'

लड़की खीझती हुई रिक्शे में बैठ गई। अविनाश वैसे ही फैलकर बैठा था। उसके कंधे लड़की के कंधे से छू रहे थे।

'उफ आप इस तरह क्यों बैठे हैं... नवाबों की तरह।'

'मैं पहले भी भिखारियों की तरह नहीं बैठता था।' अनिवाश मुस्कुराया, 'लेकिन तुम इस तरह क्यों सिकुड़कर बैठी हो'

'नहीं, ठीक है।' लड़की ने अपने कंधे छोड़ दिए।

शाम लगभग गहरा चुकी थी। रिक्शा जब वी.सी. आवास से आगे बढ़ा तो यूँ ही अविनाश ने अपने हाथों को फैलाकर रिक्शे की पुश्त को पीछे कर लिया। सड़क सुनसान थी। लड़की को लगा जैसे अविनाश उसके कंधे पर हाथ रखने वाला है। उसने अपनी आँखें मूँद लीं। लेकिन अविनाश ने अपने हाथ पुश्त पर से हटाए नहीं। लड़की यूँ ही इंतजार में आँखें बंद किए रही। दोनों के शरीर इतने पास थे कि कभी भी सिमटकर समा सकते थे। अविनाश ने गौर किया। लड़की की साँसें भी तेज चल रही थीं।

त्रिवेणी होस्टल आ गया था। रिक्शे के थमने पर लड़की जैसे नींद से जागी। थोड़ी देर तक वह यूँ ही निस्पंद बैठी रही। जैसे मीलों दूर से लौटने की थकान हो। फिर धीरे से रिक्शे से उतर गई।

'अच्छा, गुड नाइट।' उसने एकदम धीरे से कहा।

अविनाश रिक्शे पर ही बैठा रहा। उसने पूछा, 'कल मिलोगी'

'नहीं, मुझे कल जाना है।' और वह तेजी से हॉस्टल के भीतर चली गई।

'अब कहाँ भैया' रिक्शेवाले ने पूछा।

'कहीं नहीं भाई।' कहते हुए वह भी रिक्शे से उतर पड़ा। 'कितना पैसा हुआ?'

'अरे चलिए न, आपौ के हॉस्टल छोड़ देई।'

अविनाश फिर से रिक्शे में बैठ गया। लेकिन फिर थोड़ी देर बाद वह उतर गया, 'छोड़ो, इतने बड़े रिक्शे में अकेले जाना ठीक नहीं लगता।'

'का भैया का कहिन' रिक्शावाला अचकचा गया। लेकिन अविनाश ने उसे समझाने की कोई कोशिश नहीं की।

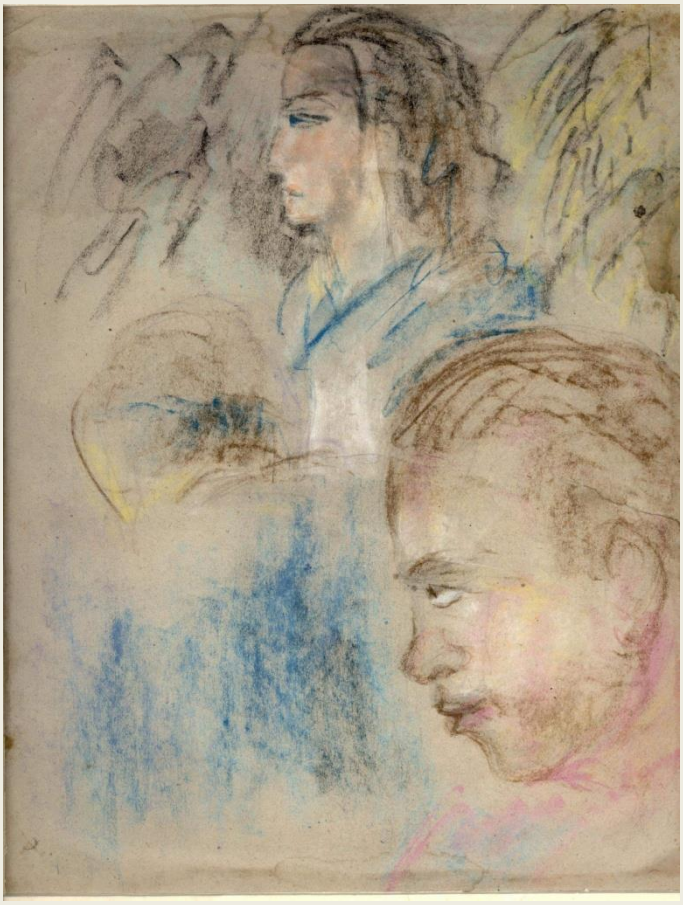

साभार- स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

सफलता

सफल जीवन के सोपान

गिरीश्वर मिश्र

क्या आपको यह मालूम है कि आप कौन हैं? मोटे तौर पर इस सवाल का जवाब हम अपने नाम और पता अर्थात् परिचय के रूप में देते हैं। पर थोड़ा गौर करें तो यह जरूर महसूस होगा कि हम सिर्फ इतने ही नहीं हैं। हमारी पहचान हमारी अपनी क्षमता, कौशल और काम करने के ढंग से बनती है। एक आदमी के रूप में हम किस्म-किस्म के काम करते हैं और उपलब्धियां हासिल करते हैं। इन्हीं सब के आधार पर दूसरे लोग हमें जानते हैं। हम भी दूसरों को उनके कार्य और उपलब्धियों या कामयाबी के आधार पर ही जानते हैं। हम वही होते हैं जो हम करते हैं।

विचारयोग्य कुछ प्रश्न

जरा ठहरिए और निम्नलिखित प्रश्नों के बारे में सोचिए।

- आपमें कौन-से गुण हैं?
- आपमें कौन-सी कमियां या कमियां हैं?
- कौन से काम आप बहुत अच्छी तरह कर सकते हैं?
- आप किस ढंग से अच्छी तरह काम करते हैं?

अक्सर हम लोग दूसरों के, खासतौर पर अपने इर्द-गिर्द के महत्वपूर्ण लोगों के कहने या सुझाव पर चलते हैं। इन चाहे अनचाहे सुझाओं के चलते बहुतों को अपने समय, धन और शक्ति का काफी नुकसान भी उठाना पड़ता है। साथ ही व्यक्ति को अनावश्यक तनाव और कुंठा से भी गुजरना पड़ता है। ऐसा व्यक्ति अव्यवस्थित कहा जाएगा। दूसरी ओर एक व्यवस्थित व्यक्ति अपने को उस जगह स्थापित कर लेता है जहां रह कर वह सबसे ज्यादा योगदान कर पाता है। ऐसे ही व्यक्ति का जीवन सफल और सार्थक माना जाता है।

अपने आपको व्यवस्थित कीजिए

आज के जमाने में जब आदमी का जीवन संघर्षों से भरपूर है, प्रतियोगिता बहुत ज्यादा है और अवसर बहुत कम हो गए हैं, अपने आपको व्यवस्थित रखना बहुत ही महत्वपूर्ण हो चला है। अब वह पुराना नहीं रहा जब किसी परिवार का पुश्तैनी व्यवसाय योग्य और अयोग्य हर किसी को परवरिश का मौका देता था। ऐसी स्थिति में यह जरूरी है कि हम सजग होकर अपने आप को व्यवस्थित रखें और सफलता तथा उत्कृष्टता की राह पर आगे बढ़ें। यह तभी संभव है जब हम अपनी क्षमताओं का ठीक-ठाक उपयोग कर सकें। इस दिशा में पहला कदम है अपनी क्षमताओं का सही-सही आकलन करना।

अपनी खूबियों को पहचानिए

एक सफल व्यक्ति अपनी खुबियों और कमियों दोनों को ठीक तरह पचानता है और अपनी योग्यता और कुशलता पर ध्यान केंद्रित करता है। यह एक सच्चाई है कि हर व्यक्ति दूसरे से भिन्न होता है और हर किसी में एक न एक क्षेत्र में उत्कृष्ठ होने की संभावना छिपी रहती है। हम जिस क्षेत्र में पिछड़े रहते हैं उसे सुधारने में ज्यादा समय लगता है और वह मुश्किल भी होता है, पर जिस क्षेत्र में हमारी क्षमता सामान्य या औसत है उसमें प्रयास करने पर उत्कृष्टता लाई जा सकती है। जिस किसी भी क्षेत्र में व्यक्ति में योग्यता रहती है उसमें अपने संसाधनों को लगाना अधिक लाभप्रद होता है हम अक्सर यह मानते हैं कि हम अपने आपको जानते हैं पर शायद ही कभी तटस्थ हो कर हम अपने कौशलों, कार्य कलापों और क्षमताओं का विश्लेषण करते हैं जिनमें हमारी संभावना छिपी रहती है।

गलतियों को सुधारिए

अपनी कमियों और गलतियों को सुधारना अपने को व्यवस्थित करने में विशेष रूप से सहायक होता है। अक्सर हम अपने सहयोगियों, मित्रों, यहां तक कि अपने शुभचिंतकों द्वारा की गई आलोचना पसंद नहीं करते। अपनी गलतियों की हम उपेक्षा करते हैं। यह दृष्टिकोण सहायता नहीं पहुंचाता। हमें अपने बारे में दूसरों से मिली जानकारी के प्रति भावावेश में न आकर सामान्य रूप से वस्तुनिष्ठता स्वीकार करनी चाहिए और उससे अपने को सुधारने के काम में फायदा उठाना चाहिए। अपनी अज्ञानता और

किसी तरह का घमंड करना और अपने अज्ञान और गलती को बनाए रखना ठीक नहीं है।

समूह में सहज आचरण कीजिए

चूंकि जीवन के हर क्षेत्र में हमें दूसरे लोगों के साथ अनिवार्य रूप से संबंध रखना पड़ता है इसलिए हमें अपनी सामाजिक आदतों को ठीक रखना चाहिए। प्रसन्नता पूर्वक सामाजिक आदान-प्रदान कार्य के माहौल को सहज बना देता है। इसलिए धन्यवाद कह कर, सिर हिला कर या अपनी भावभंगिमा से खुशी जाहिर कर हम दूसरों के सहयोग ले सकते हैं। हमारे तौर-तरीके हमारे संबंधों को बना या बिगाड़ सकते हैं। सहयोगियों के साथ स्नेहपूर्ण संबंध एक सीमा के अंदर काम को आसान बना देता है।

काम के ढंग की अपनी पसंद पहचानिए

हर आदमी के आचरण की निजी शैली होती है। उदाहरण के लिए किसी को अकेले काम करना अच्छा लगता है तो कोई समूह में रहते हुए उसके सदस्य के रूप में ही अपने वास्तविक रूप में कार्य कर पाता है। इसी तरह कोई आदमी आगे बढ़ कर नेता की तरह कार्य करना चाहता है तो कोई सहयोगी के रूप में ही अच्छी तरह काम कर पाता है। कोई मुक्त या स्वच्छंद रह कर अपने आप बिना किसी निर्देश के काम करना पसंद करता है तो कुछ लोगों को जब तक हर निर्देश ठीक-ठीक स्पष्ट रूप से न दिया जाए तो काम करने में कठिनाई होती है। यदि लोगों में भिन्नता की सच्चाई ध्यान में रहे तो भिन्न होना गलत या खराब नहीं माना जाएगा और भिन्न-भिन्न लोग जिस रूप में हैं उसी रूप में स्वीकार किए जा सकेंगे। इसके फलस्वरूप लोगों के साथ काम करना सहज हो जाता है। इसलिए यह जरूरी है कि हम अपने काम के तरीके के ठीक से समझ सकें।

सीखने की अपनी शैली पहचानिए

किसी काम को सीखने में भी लोगों में भिन्नता पाई जाती है। हर आदमी एक ही ढंग से कोई काम नहीं सीखता। कोई व्यक्ति काम को करके सीखता है तो कोई उसके बारे में बातचीत कर के सीखता है। आप खुद सोचिए कि आपकी खुद की सीखने की क्या शैली या तरीका है। अगर आप यह ठीक तरह जान जाएंगे तो आपको सीखने में आसानी होगी।

अपनी जगह पहचानिए

घर, बाहर हर कहीं व्यक्ति की अपनी जगह होती है। जब व्यक्ति ठीक जगह पर रहता है तो सुशोभित होता है। दूसरी ओर गलत जगह पर रहने पर उसका अपमान होता है, उसे ठेस लगती है। वह कुंठित होता है और उसमें भावनात्मक अवरोध पैदा हो जाते हैं। वह जीवन-पथ पर आगे नहीं बढ़ पाता है। इसलिए यह जरूरी है कि हर कोई अपना उचित स्थान बनाए। व्यक्ति को अपने व्यवहार से एक स्थान के लिए श्रेष्ठ और सुपात्र साबित होने के लिए प्रयास करना चाहिए।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि जीवन में सफलता पाने की पहली सीढ़ी है अपने आपको व्यवस्थित करना। एक सुव्यवस्थित व्यक्ति ही सफल व्यक्ति हो सकता है। ऐसा ही एक व्यक्ति बनने की कोशिश कीजिए।

याद रखें

एक सफल व्यक्ति होने के लिए अपने आपको व्यवस्थित रखना चाहिए।

एक व्यवस्थित व्यक्ति वह है जो

- अपनी खूबियों को अच्छी तरह जानता है।
- अपनी गलतियों को जान कर सुधारता है।
- लोगों के बीच अच्छे तरीके अपनाता है।
- उन परिस्थितियों को जानता है जिसमें वह अच्छी तरह कार्य कर पाता है।
- समाज में अपना उचित स्थान बनाता है।
- आगे बढ़िए। भाग्य आपके साथ है।

स्मरणशक्ति को कैसे बढ़ाएँ?

शोभा पालीवाल

स्मृति मनुष्य की चेतना का एक विश्वसनीय प्रमाण है। स्मृति के लोप हो जाने पर जड़ता आ जाती है जो जीवन का विलोम है। मनुष्य की स्मृति को बचाए रखने और उसे विकसित करने की कोशिश प्राचीन काल में शुरू हुई जो अब भी जारी हैं। आधुनिक युग की भागदौड़ और सबकुछ पा लेने की ख्वाहिश के साथ खोने और पाने की चिंता ने स्मृति के क्षरण को बढ़ाया है। आज हर कोई दौड़ रहा है । टिक कर बैठने और मन को एकाग्र करने की फुर्सत ही किसी को नहीं मिलती है। इसका प्रभाव व्यक्ति की पूरी जीवनचर्या पर भी पड़ रहा है। ख़ास तौर पर भोजन और विश्राम की अनियमितता ने स्मृति-लोप, निर्णय लेने की क्षमता के अभाव, अनिष्ट होने की आशंका और अकेले होने की पीड़ा जैसी अनेक घातक बीमारियों को जन्म दिया है। इससे मुक्ति के जितने रास्ते खोजे जा रहे हैं मानसिक रोग उतने ही बढ़ते नज़र आ रहे हैं।

पिछले दो हजार वर्षों से वैज्ञानिकों द्वारा मानव मस्तिष्क का अध्ययन किया जा रहा है। किन्तु मस्तिष्क की असीम क्षमताओं तथा इसकी उलझन से वैज्ञानिक चकराए हुए हैं कि मनुष्य के मस्तिष्क में सूचनाएँ कैसे एकत्र होती हैं? कैसे लंबे समय तक संचित रहती हैं? यह आज भी एक रहस्य है। जीवन में जो भी हम देखते हैं, सुनते हैं, सूँघते हैं, स्वाद लेते हैं, स्पर्श करते हैं या अनुभव करते हैं उसका सीधा संबंध हमारी स्मृति से होता है। वैज्ञानिकों के अनुसार स्मृति के दो प्रकार हैं – लंबी अवधि की स्मृति और अल्प अवधि की स्मृति। लंबी अवधि की स्मृति कई मिनटों से लेकर कई सालों तक रहती है। इस स्मृति में तथ्य और घटनाएँ, सृजनशीलता, तर्कशक्ति, और कौशल आदि का समावेश होता है। दूसरे प्रकार की स्मृति अल्प अवधि की स्मृति है जिसमें एक समय में पाँच से छ: बातों को ही याद रखा जा सकता है। इसके बाद की बातें स्मृति से नष्ट हो जाती हैं। मस्तिष्क में सभी प्रकार के अनुभव न्यूरॉन के द्वारा संचालित होते हैं।

आपाधापी के इस युग में मनुष्य के जीवन में स्मरणशक्ति से जुड़ी कई तरह की समस्याएँ देखने को मिल रही हैं। मनुष्य के सोचने-समझने की शक्ति, निर्णय लेने की क्षमता, विचार को पूर्णता तक ले जाने का अभाव, शब्दों के चयन की समस्यातथा लंबे समय तक याद न रख पाने की समस्याएँ आज निरंतर बढ़ती जा रही हैं।

हमें अपनी स्मरणशक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए कुछ महत्वपूर्ण बिंदुओं की ओर ध्यान देना होगा, उस जीवन शैली को अपनाना होगा जो हमारी स्मरण शक्ति को निरंतर संवर्धित करती है। इसके लिए जरूरी है कि हमारे सामाजिक संबंध मधुर और जीवंत हों। हम व्यक्तिवादी सोच से ऊपर उठकर समाज के विषय में भी सकारात्मक रूप में सोचें तो निश्चित ही हमारी स्मरणशक्ति तीव्र होगी क्योंकि अच्छे संबंध हमारी मस्तिष्क की कोशिकाओं को सुदृढ़ बनाते हैं। हँसने से हमारी चेतना सक्रिय होती है और सृजनात्मक शक्ति बढ़ती है. यह याद रहे कि

- *नियमित दिनचर्या से स्मृति में सुधार होता है*
- *उचित जीवनशैली भी हमारी स्मृति को प्रभावित करती है जैसे- वस्तुओं का सही स्थानों पर रखना, दिनभर के कार्य की एक रूपरेखा बना लेना,*
- *खान पान भी स्मृति के लिए खासा महत्व रखता है . अतः पौष्टिक भोजन करना, और प्रतिदिन छः से आठ ग्लास पानी पीना लाभकर होता है*
- *मन की एकाग्रता के लिए ध्यान एवं योग को प्रतिदिन के क्रियाकलापों में स्थान देना उपयोगी है*
- *पर्याप्त नींद लेना, सुबह-सुबह टहलने के लिए जाना, और व्यायाम करना* स्मृति को बढाता है

इन सब से हमारी स्मरणशक्ति मजबूत हो सकती है।

आज सभी तरह के प्रदूषणों ने अनेक शारीरिक रोगों के साथ-साथ मानसिक रोगों को भी जन्म दिया है। यह स्थिति किसी भी समाज के लिए शुभ संकेत नहीं है। क्योंकि मनुष्य के स्वस्थ रहने का प्रभाव उसके समाज पर भी पड़ता है। इसलिए हमें स्वस्थ रहने के लिए जीवन चर्या को सुधारना पडेगा ।

कविताएँ

दो कविताएँ

रामानुज अस्थाना

पब्लिक नल

आज पब्लिक नल पे पानी चाटती इक गाय थी
दीनता की वह शहर में एक खुला पर्याय थी
गाँव से जो भी शहर में आ गया
चाटना उसके हृदय को भा गया
हैं कहाँ पर यहाँ सुन्दर पोखरें ?
है अलग यह बात मिलती ठोकरें
गाय से प्यासा श्रमिक इक कह रहा
दूर हट जा नल अकारथ बह रहा
यदि कहीं यह नल चला फिर जाएगा
मेरा भूखा पेट अपने अश्रु ही पी पाएगा
देश में सिद्धांत-वादी लोग अब रहते कहाँ
मेरे जैसे श्रमिक ही सिद्धांत को सहते यहाँ
हैं नहीं पाबंदियाँ मदिरालयों के द्वार पर
पर मुझे अचरज बड़ा है नलों के व्यवहार पर
वे इन नलों को हैं समय से खोलते
निर्बलों की आह को भौतिक तुला पर तोलते
तब अचानक श्रमिक प्यासा मूर्तिवत बस रह गया
पानी नल का रूक गया जो गिरा नीचे बह गया
लाइनें फिर से लगीं और हो रहे झगड़े बड़े
पहले पानी मैं पियूँगा बात यह कहकर लड़े
आ रहा नल का समय प्यासे जुबाने चाटते
जो सहज सुलझे हुए थे वे थे नंबर बाँटते
तब एकाएक कार का उजला क्लीनियर आ गया
प्यासों को पीछे हटाकर कार को नहला गया

झूठ का पौधा

झूठ का पौधा जो बोया था कभी
फूल-फल आने हैं उसमें भी अभी
अंकुरण उसका मुझे सहमा गया
कुछ समय तो वह मुझे भी भा गया
पर बढ़ी जब बेल उसकी डर गया
सत्यनिष्ठा का हृदय अब मर गया
आत्मा मेरी मुझे धिक्कारती
दूर जा बैठी थी मुझसे भारती
मैं हुआ कवि झूठ कैसे लिख गया
चंद सिक्कों के लिए पुरूषार्थ मेरा बिक गया
लिख गया असुरों के हित में सुर व्यथा
भूल बैठा मैं मनुज की उर व्यथा
जो सृजन को भूल जाए छवि नहीं
छीन लो मेरी कलम मैं कवि नहीं!

चंद अशआर

जुगल चौधरी

जिंदगी की जद्दोजहद से खुश हूँ मैं "दोस्त"
बस दुनियाँ के रस्मों-रिवाज़ मुझे मायूस कर देते हैं।

दुनियाँ जब भी करती है रस्म-ए-दस्तूर की बात,
तो रूह सी काँप जाती है ये सोचकर।
मैं जिस रास्ते पर चल रहा हूँ उसका अंजाम क्या होगा।।

जिसको भी मौका मिलता है पीता जरूर है।
न जाने कैसी मिठास है इन गरीबो के खून में।।

अब तुम मिल ही गए हो तो बस इतनी सी मेहर कर दो।
दे दो ज़िंदगी का साथ और ज़िंदगी फ़ना कर दो।।

कब तक परेसान करता उस नादान-ए-मोहब्बत को मैं,
सवाल उसकी खुशी का था।
मैंने अपनी खुशियों से तौबा कर ली।।

एक सच छुपाने में,कितने झूँठ गढ़ दिए उसने,
अच्छा था उस हकीकत से हम अंजान रहते।।

वो तय कर चुका था जिंदगी की मंज़िले, ए हमसफ़र
अगर मैं अपनी मंज़िल की सोचता तो उसको मंज़िल नहीं मिलती।।

वो हर रोज की तरह भूल गया है आज भी सब कुछ
और एक हम हैं, जो न जाने किस उम्मीद मे बैठे हैं।

किस-किस से बचाऊँ उस नादान-ए-मोहब्बत को दुनियाँ की नजरों से मैं।
कुछ न कहूँ तो दिल जलता है,कुछ कह दूँ तो मैं बेवफ़ा हो जाता हूँ।।

तुझसे बिछड्ना है एक दिन ये मालूम था 'मगर'।
अपनी औकात इतनी सी थी ये मालूम न था।।

दास्तान-ए-ज़िंदगी हम कहे तो किस तर।
हर किसी को जीना नहीं आता।।

जरूरी था मेरे रुख से पर्दा हटना।
तुझसे बिछड्कर भी ज़िंदा रह सकता हूँ ये यक़ीन न था।।

बातों-बातों मे उस हमदर्द ने हमसे पूंछा, प्यार की डेफ़िनेसन क्या होती है?
तब एहसास हुआ, उस खुदा ने ए कैसा सवाल पूंछा अपने सागिर्द से,
जो दिन रात उसकी खिदमत मे रहता है।।

तुमि के तुमि जानो ना...

सपना सिंह

हे वसंतविहारिणी !
तुमि के तुमि जानो ना, जानि आमि,
प्रति वर्ष फल्गुनमासे आसो झूमि झूमि
माँ ! दिते आमादेर के नव नूतन ज्ञान,
धारण करे आसो, धवल नवीन परिधान।
जानि तोमा के तुमि के ? हे जगत्परिवर्तिके !
सृष्टिसंयोजिनी नवमूलोत्पादिनी,
अर्तिहारिणी स्वविश्वविहारिणी।
जानि तोमा के, तुमि सेई,
प्रकृतिपुरुषेर मिलनेर क्षितिज-, ब्रह्मामानसविहारिणी
तुमि सुवर्णमयी हिरण्यरश्मि,तुमि स्वर्णाभा सुस्वपना,
अग्निशिखासम पवित्रप्रवाहमाना, तुमि प्रथमगणना,
तुमि शुचि सम्यमाना सुशीला सुकृतविलासिनी,
पद्मालया पद्मगन्धा पद्मप्रसूता पद्मश्री तुमि पद्मिनी,
श्वेतवसनाभूषणावृता , तुमि संगीत तुमि कविता ,
श्यामाशिवा तुमि सर्वावयवाशोभाढ़या, माँ "शोभा"सेविता,
शुभे! सुभ्रू शोभितांगी आशाकामनापूर्णार्थिनी नन्दिनी,
माँ लेखनी सुधी ध्वनि दिये, दूर करो तुमि ज्ञानपिपासा,
आज माघशुक्ल पंचमी के, पूर्ण करो जनेर अभिलाषा।
मानसरोवरे श्वेतहंसवाहिनी , दुर्जन अहंकारविनासिनी,
के तुमि जानो ना, जानि आमि, स्वजन संतापनाशिनी,
माँ तुमि, तुमि बांधवी, भगिनी तुमि इ आछो, हे अज्ञानविनाशिनी!
आच्छे आज जन मन उद्विग्न, भयाक्रांत हे अज्ञानभयनाशिनी!
हे सौदामिनी!
दामिनीर रक्खा करो, जनेर मने सुंदर संस्कार भरो,
निजेर माटी के करो सोनार, हे शक्तिसञ्चारिणी!
आज तोम्हार केऊ रवीन्द्र नाई, नाई चन्द्र वंकिम,
आज नाई नजरूलेर कवितार जोश, बोलो केनो खामोश।
मन्द केनो सुभाषेर अभिमान, महान विवेकानन्देर ज्ञान,
बोलो तुमि तुमि इ बोलो, हे जयश्री कालिके वागीश्वरी!
तोमार चरणे कोटि प्रणाम माँ, साष्टांग समर्पित "सोनश्री"।

पाषाण पथिक

अविनाश त्रिपाठी 'अंकुर'

क्या पूछते हो?
जवाब नहीं मिलेगा इन पत्थरों से
क्या संतुष्ट हैं वो?
तुम्हारे उत्तरों से?
जो हो आत्ममुग्धता में आतुर
वो क्या जाने,
किसी के मन की
चेतना के भावों को,
हे ! पथिक, तू मत समझ के,
तू अकेला है,
जीवन की राह में,
सब हैं साथ तेरे, बस
अहं-अहं का खेला है
तू तो बस चला चल
अपनी राह पे,
यहाँ तो हर पल इक मेला हैं
नहीं जाता कोई साथ
अंतिम घड़ी में
इतना समझना,
नहीं कोई आंसा बात,
जपी-तपी भी रह जाते हैं
मोह-पास में,
तू तो अभी राही है,
बस चला जा, चला जा
न रुक न सोच, कौन समझा?
कौन उलझा? तेरी बातों में,
कौन चाहता ज्ञान? तू तो बस
चला जा, चला जा
इन पत्थरों से आगे निकल जा,
स्वर्णिम रौशनी है,
तुझे पुकारती,
क्या सोचता है?
सुनी है तेरी बात,
इन पत्थरों ने,
नहीं, कम आँका
है तुझे
तू तो राही है,
ज्ञान के सफर का,
जो मिले लेता जा
और
बस चला जा, चला जा
इन पत्थरों से आगे
इन मूकों से आगे
तू पथिक है
पथिक है
बस पथिक है...

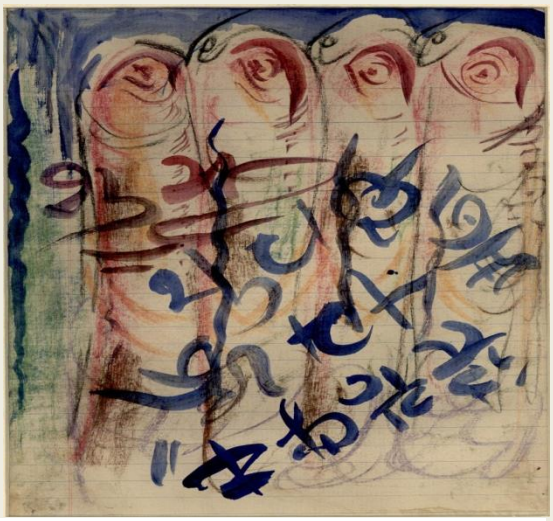

साभार- स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

महिला सशक्तिकरण

रजनीश कुमार अम्बेडकर

सुना है.....!
महिला सशक्तिकरण हो रहा है
जिसकी मांग राजनीतिक पार्टियां,
महिला संगठन और
गैर सरकारी संगठन कर रहे हैं.....!!
इसके लिए कार्यशालाएं,
सेमिनार आयोजित किए जाते हैं.....!
पर अफ़सोस होता है जब
महिलाओं का प्रतिनिधित्व कितना है,
समाज के हर क्षेत्र में,
इसकी कोई भी जानकारी नहीं दे रहा है.....!

सड़क से लेकर संसद तक आन्दोलन होते है
33 प्रतिशत आरक्षण का बिल अभी भी ठंडे बस्ते में,
आज महिलाएं पूंछ रही है.....?
आजादी के 68 वर्षों बाद भी,
हमारा प्रतिनिधित्व हर क्षेत्र में कितना हुआ है.....!
क्या वाकई में हमारा सशक्तिकरण हो रहा है.....?
इसलिए कैंपस से लेकर
समाज के हर तपकें से,
महिलाओं की आवाज उठ रही है
हमें प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए.....!
हमें प्रतिनिधित्व मिलना चाहिए.....!!

नहीं करना चाहता हूँ! संवाद

प्रदीप त्रिपाठी

अब नहीं करना चाहता हूँ...
मैं
तुम्हारी कविताओं से किसी भी तरह का संवाद
एक लंबे अरसे से सुनते-सुनते
तंग आ चुका हूँ.. मैं
तुम्हारे इन अजनबी बीमार
बूढ़े शब्दों को
मुझे अच्छी नहीं लगती
तुम्हारी किसी एक उदास शाम की कल्पना
बार-बार सोचता हूँ
आखिर क्यों नहीं बनता है
तुम्हारी कविताओं में प्रेम का कोई एक चित्र
या कोई जिज्ञासा
जिसे मैं थोड़ी देर तक गुन-गुना कर चुप हो सकूँ
क्यों नहीं झलकती है कविताओं में तुम्हारी उम्र
तुम्हारी इच्छाएँ ,वासनाएँ

नहीं बजता है गीत-संगीत या कल-कल की कोई एक धुन
कभी नहीं दिखते हैं इस तरह के
कोई भी प्रयास या कोशिशें।
मुझे दिखते हैं तुम्हारी कविताओं में
सिर्फ और सिर्फ
ढेर सारे ... अल्पविराम, कामा, प्रश्नवाचक चिह्न
या फिर सदियों से चले आ रहे कुछ लंबे अंतराल
जिसे देख कर मुझे हो जाना पड़ता है
अंततः निःशब्द ...

पेशावर -बच्चों के प्रति

बच्चों ने नहीं पढ़ी थी
कोई ऐसी 'मजहबी' किताब
अथवा 'धर्म-ग्रंथ'
जिसमें लिखा हो
बम, बारूद अथवा अचानक अंगुलियों से फिसल जाने वाली
संवेदनहीन, बंदूक की गोलियों की अंतहीन कथा

ऐसी कोई भी किताब नहीं पढ़ी थी,
अब तक, बच्चों ने
बच्चों ने नहीं बूझी थी ऐसी कोई जिहादी-पहेली
ऐसा कुछ भी, नहीं सीखा था
इन बच्चों ने।

बच्चों में बहुत 'भय' था
सिर्फ इसलिए कि
बच्चे जानते थे
कि
वे 'बेकसूर हैं....

हत्या

डी. एन. प्रसाद

मैंने छीड़ दिया हैअर्ध्य देना, सूरज को
सबेरे-सबेरे
दिवो दुहिता, स्वर्ग की बेटी
गरबीली उषा के लिए!
मेरे स्वाभिमान का सर्वनाश कर
मेरी हत्या का षड़यंत्र रचा था उसने
और यह स्वार्थी सूरज
मेरे टूटने के सुख का उपहास उड़ा रहा था
बावजूद इसके -
संदर्भ जब टूटने लगे-
अर्थ की सत्ता दृष्टिगोचर होती है
शब्दों का टूटना
नियति की नैसर्गिकता को भंग कर देता है
कभी-कभी, इसी वजह से
शब्द, छन्द, ताल, लय
बिखर-बिखर जाते हैं,
अर्थ का आयाम पूर्ववत सीमा खोजता है
परंतु, सीमाहीन बिखराव कोई सम्बल नहीं
दे पाता!! सुनो!
किसी की हत्या करना ही, हत्या नहीं है
प्रतिभा को मारना भी हत्या है
और सच पूछो, मेरे घन्टू दा-
आदमी को गमले में मढ़ना भी-
एक हत्या है!

मेरी कविता की लड़की

हरप्रीत कौर

एक

मेरी कविता की लड़की से
कहना चाहता हूँ
तुम दुनिया की सबसे अच्छी लड़की हो
जैसे ही कहने को होता हूँ
वह कहती है
'मेरी तो कुड़माई हो गई
जा किसी और को कविता में ला'
मैं उसे फिर से कहता हूँ
'नहीं, नहीं कविता में आने से
किसी का कुछ नहीं खोता'
जैसे ही कहने को जाता हूँ
वह मेरी कविता से दूर चली जाती है
फिर बरसों-बरस वापिस नहीं आती है।

दो

उसे कहीं जाने की जल्दी है
अचानक मुझसे टकरा गई है
और एकदम हड़बड़ा गई है
मैंने उसकी कोई चोरी पकड़ ली
जिसे कविता में लिख कर

मैं सबको सुना दूँगा
सब जान जाएँगे
कि वह कहाँ गई थी

तीन

मेरे साथ
लंगड़ा शेर, पिच्चो, गीटे, टप्पा खेलोगे?
कह कर मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगती है
जैसे ही मैं जीतने लगता हूँ
वह मुझसे हारने लगती है
कहती है -
'कविता में मुझे रोता देख कर
हारने लगते हो ना तुम'
'खेल में तुमको जिता कर
हारना चाहती हूँ मैं
हमारे गाँव में मेहमानों को हराने का रिवाज नहीं
हारना ही है तो जा कहीं और जा कर खेल'
इतनी बड़ी बात कह कर
हँसने लगती है खिलखिला कर
मेरी कविता की लड़की

चार

नींद से उठ कर
बैठ गया हूँ
इतनी रात गए
कविता में लाना चाहता हूँ उसे
वह है कि अभी सब्जी काट रही है
फिर कपड़े तहाएगी
फिर जाने क्या-क्या करेगी
तब तक तो
सो ही जाऊँगा मैं

पाँच

कान में पाँचवा छेद करवा कर
कह रही है मुझे-
'वह सामने देखो
मुरकियों वाला गाँव
सारी लड़कियों के कान में
पाँच-पाँच छेद हैं
हे वाहेगुरू
देखा है कोई गाँव कहीं लड़कियों के नाम से मशहूर
वहीं से छिदवाए हैं
छब्बी, अक्की, वींटा, राणो, सब ने
तुम्हें तो चिड़ी उड़ कौआ उड़ भी खेलना नहीं आता
भला तुम्हारे कहने से थोड़े उड़ने लगेंगी सारी चीजें
और हाँ
थोड़े ही आ जाऊँगी तुम्हारी कविता में मैं
'ठीक वैसी की वैसी
जैसी कि मैं हूँ'

छः

खेत में लस्सी पहुँचाने
चली आई है तपती दोपहर
कोई है कि सुन ही नहीं रहा
कि उसके पास लस्सी है
जिससे बुझ सकती है प्यास
ट्यूबवेल की घर्रर-घर्रर में
किसे सुनती है उसकी आवाज
मैं हूँ कि चाहता हूँ
वह लस्सी रख कर आ जाए वापिस
मेरी कविता में खाली हाथ ....

सात

मेरी कविता की
लड़की को
यह पता है
कि
मुझे सब पता है
मुझे भी यह पता है
कि
उसे सब पता है
पर
कविता से बाहर
हमें एक दूसरे के बारे में
कुछ भी नहीं पता है।

माँ : कुछ शब्द चित्र

राकेश श्रीमाल

एक

कभी नहीं बताया होगा
माँ ने तुम्हें
कि देखा था उसने अपने सपने में
अपनी बेटी के प्रेमी का चेहरा
क्या अच्छा लगा होगा
तुम्हारी माँ को
वह सब कुछ देखना
जो मैंने उस समय तुम्हारे साथ बरता होगा
क्या धारणा बनाई होगी माँ ने
आखिर मेरे बारे में
कुछ तो मेरे पक्ष से भी सोचा होगा
यही कि कोई भी होता
तो वह भी वही बरतता
मन ही मन मुस्काई तो होगी जरूर माँ
हो सकता है याद आ गए हां पुराने दिन भी
और यह भी कि
उनकी माँ भी देखती होगी ऐसे ही कुछ सपने
सच बताना
एक दिन माँ की हैसियत से
तुम यह सपना देखना पसंद करोगी या नहीं

दो

माँ कैसे देखती होगी
तुम्हारी उम्र
तुम्हारी इसी उम्र के बराबर करके
क्या जान जाती होंगी वह
तुम्हारे सारे ऊटपटांग विचार
तुम्हारी इसी उम्र में जाकर
क्या माँ भी तुम्हारी तरह हर रविवार
बांधती होगी दो चोटी
और उन गीतों को गुनगुनाती होगी
जो अब पूरे याद नहीं रहे उसे
माँ अपना ही बिताया जीवन
फिर से देखती होगी
लगभग विस्मय की तरह

तीन

माँ किसी मौसम को नहीं देख पाती होगी उस तरह
जिस तरह देख पाती हो तुम
माँ, देखती होगी
किसी भी मौसम को
उसके बाद आए मौसम से मिलाकर
मसलन ऐसी ठंड तो इसके पहले भी पड़ी थी
हाँ, गर्मी थोड़ी अलग है यह पिछली गर्मी से
अब पहले जैसा समय क्यों नहीं टपकता
बरसात की बूंदों के साथ-साथ
माँ किसी भी मौसम में
नहीं देखती केवल मौसम
वह बीते दिनों को इस बहाने देख लेती होगी
जब हुआ करते थे उसके भी बेहतरीन मौसम

चार

कभी तो सोचकर धक्का लगता होगा माँ को
कहीं तुम्हें धोखा ही ना मिल जाए प्रेम में
फिर विश्वास बहकाता होगा उसे
तुम्हारी ही नीली उड़ानों में
कभी तो चुपचाप बांध देती होगी वह
अपनी अतृप्त इच्छाओं की गठरी
सब जानती है माँ
जो तुम करती हो
हमेशा उससे छिपाकर

पाँच

तुम्हारी उम्र को
किस तरह बढ़ती देखती होगी

माँ अपनी ही आँखों से
अपना ही विस्तार समझकर
या खुद ही जी लेती होगी
तुम्हारी यह उम्र भी
चुपचाप तुम्हारे साथ रहकर

छह

माँ सोचती होगी
क्या-क्या सिखा दूं अपनी बेटी को
और वह भी जल्दी-जल्दी
जो खुद उसने नहीं सीखा कभी

सात

उस दिन
माँ ने ही बताया था
तुम्हारे बचपन का एक मजेदार किस्सा
और हँस दी इस तरह
जैसे अभी-अभी फिर से घटा हो उसके सामने

आठ

किस तरह लेती होगी
हमारे प्रेम को
माँ अपने ही देखने में
ऐसे
जैसे ऐसा होना ही था
या फिर ऐसा
हमेशा ही क्यों होता है

नौ

मेरा सोचना
माँ के सोचने में जाकर
ऐसा गड्ड-मड्ड हो जाता है
ठीक से दिख नहीं पाती तुम
उसके देखने में रहती है अलग जिम्मेदारी
मेरे देखने में अलहदा मस्ती
वह फिक्र की पारदर्शी सीप में रखती है तुम्हें सहेजकर
मैं खुले मैदान में दौड़ता तुम्हारे पीछे
उसकी हर बात धीर गंभीर तुम्हारे लिए
मेरी महज छेड़छाड़
तुम खामोशी में अक्सर रहती हो माँ की बेटी बनकर
मुझे अच्छा लगता है तुम्हारा बेटा बनना

दस

माँ ने क्या सोचकर पहनाई थी तुम्हें
अपने जीवन की पहली साड़ी
कितने बंध बार-बार बांधे तुमने
साड़ी पहनना सीखने के दौरान
कितनी बार मीठे से झल्लायी होगी माँ तुम पर
कितनी बार उतरा होगा तुम्हारी आँखों में मेरा अक्स
साड़ी को लपेटते-लपेटते
क्या तुम्हें यकीन है
माँ ने भाँप लिया होगा
साड़ी के पल्लू को छूकर
वहाँ मेरा अदृश्य होना।

साभार- स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

भूले बिसरे गीत

भोजपुरी के भूलते बिसरते बाल खेल-गीत

माधुरी मिश्र

परिवार में शिशुओं को बहलाने-फुसलाने और खिलाने के लिए माताएं, दादियां और बड़े-बूढ़े सरल और आकर्षक ध्वनियों के साथ बच्चों के साथ बात करते हैं, गुनगुनाते हैं और गाते हैं. ये खेल गीत हमारी संस्कृति की अनमोल धरोहर हैं. आज टी वी, वीडियो गेम और आई पैड के जमाने के शगल तो कुछ और ही होते जा रहे हैं. पर अभी ज्यादा दिन नहीं हुए जब बच्चे को गोद में ले कर या फिर सोते हुए अपने बगल में सुला कर बच्चों को सहलाते-दुलराते हुए माता या दादी सहज रूप में स्नेह की अविरल धारा प्रवाहित करते रहते थे. मौखिक परम्परा में पीढी दर पीढी चले आ रहे इन गीतों की खूबी यह भी है कि इनकी गूँज सामाजिक भेद-भाव से ऊपर उठ कर गरीब अमीर हर किस्म के घर आंगन में अकसर सुनी जाती रही है.

बच्चों के इन खेल-गीतों में शब्दों की प्रवाहमय लड़ी होती है. इनमें प्रयुक्त ध्वनियां सरलता से ध्यान आकृष्ट करने वाली होती हैं. वे बाल-मन को आसानी से बाँध लेती हैं. कई बार इन गीतों में आने वाली ध्वनियों का कोई ख़ास अर्थ भी नहीं होता, पर एक हलकी सी ध्वनि या गूँज जरूर उभरती है जो आसानी से ग्रहण किये जाने योग्य होती है और अपने आस-पास महसूस की जा सकती है . यहाँ पर ऐसे ही कुछ बाल खेल खेल गीतों की बानगी प्रस्तुत है .

एक

घनत मनत एक कौड़ी पउलीं
ऊ कौड़िया हम गंगा बहवलीं
गंगा माता बालू देहलीं
ऊ बलुइया भुजैनिया के देहलीं
भुजैनिया हमके भूजा देहलिस
ऊ भुजवा घसिकटरा के देहलीं
घसिकटरा हमके घास देहलिस
ऊ घसिया हम गैया के देहलीं
गैया हमके दूध देहलिस
ऊ दुधवा हम राजा के देहलीं
राजा हमके घोड़ दिहलें,
ओही घोड़े आईला
ओही घोड़े जाईला
पान फूल खाईला
तबला बजाईला
नया भीत उठाईला
पुरान भीति गिराईला
देख बुढ़िया!
हांड़ी खोन्हा संभरले रहिहे !
बाबू इहे जाता ,
पुलुलुलू ! पुलुलुलू !!

दो

ओक्का बोक्का
तीन तड़ोक्का
लइया लाची
चन्नन काठी
चनना के का नांव ?
रघुआ !
का खाय?
दूध भात !
कहां रहे?
बन में !
का बिछावे ?
कमरा के टुक्का !
दलिया पुचुक्का !
घाऊँ माऊँ
दहिया जमाऊँ
ताई ताई रोटिया
घिया में चभोरिया
बाले मियाँ मरि गइलें
के खाई रोटिया ?
लाती-पूती लाती-पूती
लाती-पूती लाती-पूती

तर काटे, तरकुलवा काटे
काटे बन के खाझा !
हथिया पर घुंघरू ,
चमकि रहें राजा !
राजा के रजाई भींजै
भैया के दुपट्टा !
हींच-मार हींच-मार
मुसरी के बच्चा !
लाती-पूती लाती-पूती
लाती-पूती लाती-पूती

तीन

चन्ना मामा
आरे आव
पारे आव
नदिया किनारे आव
सोने के कटोरिया में
दूध-भात लेहले आव
बहिनी के मुहवा में घुटूक्क

चार

आउ रे चिरैया बन झोंझे से
तोके भूजों तेले से
हथवा गोडवा बिलरिया के देहलीं
बीचे में के गुद्दा बाबू खाय

पांच

बाबू हो तूं चोर !
चोरौल मामा के घोड़ !
दुअरवा बान्हल हाथी !
तूं बड़े बाबा के नाती !
जो उहे चोर हम पउतीं !
कुलनंदन नाव धरउतीं !
कुलदीप कहि गोहरौतीं !

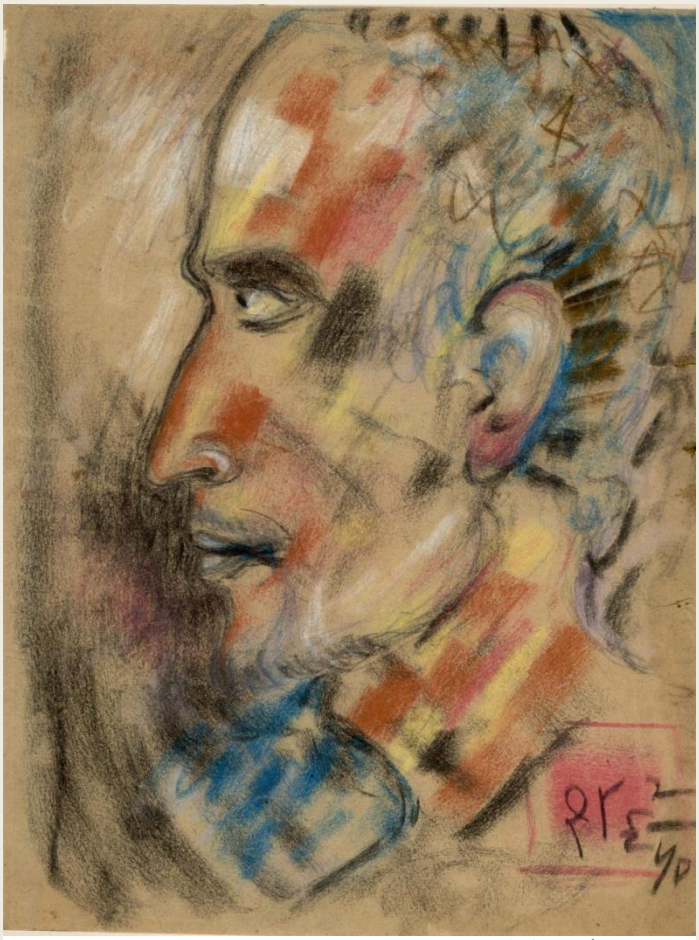

साभार- स्वामी सहजानंद सरस्वती संग्रहालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

व्यंग्य

कलिकाल का विद्वत समाज

मनोज कुमार राय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बिरला-ब्रोचा छात्रावास के कोने पर स्थित अश्वथ वृक्ष के नीचे भगत जी अपनी दुकान लगाते हैं। वे बताते हैं कि उनकी यह दुकान मालवीय जी के जमाने से चली आ रही है। उनके दुकान की दानेदार मूँगफली और अदरक युक्त नमक की कोई शानी नहीं है। एक दिन मैं अपने परिवार के साथ उधर से गुजर रहा था तो मूँगफली खाने की इच्छा हुई। वाहन से उतरकर भगत से मूँगफली ली और वहीं पेड़ के नीचे बैठ गया। बच्चे नाला पार कर फुटबाल का आनंद लेने मैदान में बढ़ गए। हम पति-पत्नी मूँगफली फोड़ने लगे। मूँगफली फोड़ना भी एक कला है। अक्सर लोग दाँत से अथवा हाथ से पूरी ताकत लगाकर फोड़ते है। परिणामस्वरूप दाने सही मात्रा के साथ हाथ में नहीं आते हैं। मूँगफली के पेट वाले हिस्से की तरफ अगले हिस्से के पास अंगूठा से दबाने पर यह अपने आप दो भागों में बंट जाता है और दाना साबुत निकलता है। इस कला को हम देहाती चना- मटर छीलने के लिए भी प्रयोग करते है। बड़ी-बड़ी महफ़िलों के लिए तैयार की जाने वाली मूँगफली की दास्तान तो अद्भुत है। गरीब और बेसहारा औरतें तो इसे अपने नाजुक होंठो से इसलिए छिलती है कि कहीं दाने के किसी हिस्से में दरार न पड़ जाये। क्योंकि इससे उनकी मजदूरी पर असर पड़ सकता है। इस पर प्रो कृष्ण कुमार ने एक बेहद मार्मिक कहानी भी लिखी है-'द्रौपदी के होंठ'।

अपनी सहधर्मिणी को मैं यह सब सुना रहा था। पर उनका ध्यान तो कहीं और था। मैंने उनसे पूछा आप यहीं हैं न! बोली हाँ। उन्होने कहा जरा ऊपर डाली पर तो देखिये। शाम का समय था। पक्षी अपने घोसलों की तरफ लौट रहे थे। विशाल और घने अश्वथ वृक्ष पर जगह के लिए खींचतान जारी थी। तरह-तरह की आवाजें आ रहीं थीं। लग रहा था जैसे सारा मर्त्यलोक ही अश्वथ वृक्ष पर आ जुड़ा है,चारो ओर कलरोर है गोया कोई पक्षी-मेला लगा हो। पक्षी-कलरव सुनकर बड़ा आनंद आ रहा था। तरह-तरह के पक्षी। पक्षी-विज्ञान में मेरी कोई गति नहीं। अत: अधिकांश के नाम मुझे नहीं मालूम। तभी मेरी नजर वृक्ष के एक मोटी डाल पर आमने-सामने बैठे दो पक्षियों पर पड़ी। उनके हाव-भाव से लग रहा था कि वे दोनों काशी विवि में कहीं और से बहककर आये हैं। अन्य अधिकांश पक्षी अपनी-2 जगह पर बैठ गए थे। पर ये दोनों अभी भी बेचैन थे। एक ने पूछा-मित्रवर काक ! किधर से आना हुआ है? काक ने कहा-यहीं अयोध्या से आना हुआ है। तुम कहाँ से आए हो उल्लू भाई? उल्लू ने कहा – जनकपुर से। दोनों की आँखों में अचानक खुशी की लहर दौड़ गई। गोया त्रेता की रिश्तेदारी याद आ गई हो। सुख-दुख के बाद दोनों अपने मूल विषय शिक्षा पर आ गए। काक ने बताया कि मैं तो साहित्य का अध्यापक हूँ। यहाँ काशी में कुछ पुराने विद्वानों से संपर्क की लालसा में चला आया हूँ। कल देखूंगा कि किस-किस से मिलना हो पाता है। उल्लू ने बताया कि वह तो दर्शन का आदमी है। यहाँ पंचगंगा घाट पर न्याय-दर्शन के एक बड़े आचार्य हैं। कल सुबह उन्होने बुलाया है। देखता हूँ कल कुछ हो पता है अथवा नहीं। सहधर्मिणी ने कहा-उठिए और चलिये। काक-उल्लू की बात मत सुनिए। घर पहुँच कर खाना बनाना है। मैंने कहा – अरे भामिनी ! विद्वानों की बात यदा-कदा सुनने को मिलती है। अभी मैं माई को फोन कर देता हूँ कि रोटी बना लेगी और हमलोग रास्ते में 'बिंदास रेस्तरां'से सब्जी ले लेंगे। नाक-भौं सिकोड़ते हुए वह किसी तरह शांत हुई।

अयोध्या और जनकपुर की अदावत पुरानी है। शक्ति,शील और सौंदर्य की लड़ाई त्रेता से चली आ रही है। संकटमोचन पर होने वाले रामायण में भी रामायणियों के बीच श्रेष्ठता को लेकर अक्सर तलवारें खींच जाती है। अयोध्या के पक्षधर जब यह कहते हैं कि राम को देखने के बाद तो जनकपुर वाले ऐसे दौड़े जैसे गरीब बच्चे शादी-विवाह में सिक्के लूटने के लिए दौड़ते हैं- 'धाए धाम काम सब त्यागी।मनहुं रंक निधि लूटन लागी'। तो जनकपुर वाले भी ताल ठोंककर मैदान में उतर जाते हैं- 'जेहिं बर बाजि रामू असवारा। तेहि सारदउ न बरनै पारा'। तो तुम्हारा राम श्रेष्ठ तब हुआ जब वह जनकपुर की धरती को माथे लगाया। संकटमोचन पर सुने गये प्रवचन का आज बहुत दिनों बाद चाक्षुष दर्शन हो रहा था। काक और उल्लू दोनों अपनी-अपनी बड़ाई खास तरीके से कर रहे थे। देश-विदेश की यात्रा और दिल्ली के गलियारों में बढ़ते अपने सम्बन्धों का बखान भी वैसे ही शुरू था जैसे 'सुरसा-मुंह'। कोई किसी से कम नहीं था। रात्रि बढ़ती जा रही थी। मूँगफली भी खत्म हो गई थी। मैं भी उठा और घर के लिए चल दिया।

अगले दिन एक निजी कार्य से मैं विवि के केंद्रीय कार्यालय जा रहा था। मैं पैदल ही था। रास्ते में प्राचीन इतिहास विभाग को

देखकर इसके गौरवशाली इतिहास का स्मरण हो आया। । बताते हैं कि यहाँ कभी काशी प्रसाद जायसवाल ,वासुदेव शरण अग्रवाल और अल्तेकर जैसे मनीषी अपना योगदान दे चुके हैं। मैं अभी इन महापुरुषों को याद कर ही रहा था कि पीछे से किसी ने मुझे आवाज दी । मुड़कर देखा तो एक सज्जन जो किसी जमाने में मेरे प्रिय कनिष्ठों में से एक हुआ करते थे,तेजी से मेरे तरफ बढ़ रहे थे। हालचाल जानने के बाद मैंने पूछा कि इधर कैसे आना हुआ? उन्होने बताया कि किसी की फाइल 'क्लीयर' कराने आया हूँ । सड़क पर खड़े होकर हमलोग अभी बात कर ही रहे थे कि जनकपुरी उल्लू हमलोगों के सामने से गुजरा । मैं अभी कुछ कहता उसके पहले ही हमारे कनिष्ठ ने बताया कि यह बड़ा विचित्र उल्लू है। मैंने पूछा-क्यों ? कनिष्ठ ने बताया कि कल दिन में इनसे मेरी भेंट हो चुकी है। मैं अपने कार्यालय में बैठ कर फाइले वगैरह देख रहा था कि ये अपने गुमान में बिन बुलाये मेहमान की तरह आ धमके और अपने आका के नजदीकी का धौंस दिखाकर अरदब में लेने की कोशिश करने लगे। मैं भी ठहरा गायत्री मंत्र के आदि गायक विश्वामित्र-खानदान का। मैं भला क्यों चुप रहता। मैंने उन्हे आँख तरेर कर देखा। वे नरम हो गए। फिर कभी आने की बात कहते हुए उठे और चले गए।उसनेकहा- देखिये भइया! कलयुग में अपनी बुद्धि घुटने में चली गई है। इसलिए हमलोग जब बुद्धि का प्रयोग करते हैं तो ..... । अच्छा! तो ये बात है। कुछ देर बाद हम दोनों अपने-2 रास्ते हो लिए। मैंने भी कुछ अन्य कार्यों को निपटाया और चल दिया अपने घर की तरफ । रास्ते में फिर वहीं भगत भाई की मूँगफली की दुकान पर रुक गया। देखा कि दोनों विद्वान अपनी-2 जगह पर धमक चुके हैं। चेहरे की प्रसन्नता बता रही थी कि दोनों अपने-2 उद्देश्य में कुछ-2 सफल हुए हैं। मैं भी पेड़ के नीचे बैठ गया और उनकी बात सुनने लगा । दोनों की एक खासियत तो तुरंत समझ में आ गई कि एक राजभाषा में निपुण था तो दूसरा राष्ट्रभाषा(?) में । पर बात दोनों 'हिन्दुस्तानी' में ही कर रहे थे। बात पुन: घूम-फिरकर वहीं पर आ गई जहां पर छूटी थी। दोनों कई बार अपने देह-भाषा से एक दूसरे को पछाड़ने की कोशिश कर रहे थे। पर दोनों की मातृभूमि से इतिहास में भी कभी कोई मल्ल नहीं पैदा हुआ था। अत: अटल-मुशर्रफ वाली देह-भाषा से ही काम चल रहा था। पर मैं ठहरा शुद्ध 'मल्ल-भूमि' निवासी । अपने ही गाँव के श्री राजनारायन ने विश्वविजयी मल्ल गामा के छोटे भाई इमामबख्श को पलक झपकते ही अपनी टांग (एक प्रसिद्ध दांव) से आसमान दिखा दिया था। उसके बाद भी मल्लों की एक लम्बी परंपरा रही है। 'नगीना-मंगला' की कुश्ती तो सिर्फ इसलिए टाल दी गई कि जीत-हार के बाद सनके-बौराये इन परशुराम पुत्रों को संभालेगा कौन? मेरी अपनी ही धरती पर जन्मे कुश्ती कला मर्मज्ञ श्री केशव प्रसाद जी का नाम तो सदा अविस्मरणीय रहेगा जिनके बारे में कहा जाता है कि उनकी एनआईएस(एक डिग्री) की कापी के मूल्यांकन के लिए इराक़ी कुश्ती विशेषज्ञ को बुलाया गया था। कहते हैं कि उनके जैसा दांव-पेंच शायद ही कोई जानता था। अत: मैं तो शुद्ध मल्ल की आस लगाए बैठा था। पर घोर कलि काल में आमने-सामने के मल्ल का जमाना कब का बीत चुका है। अब तो सबके हाथ में धारदार गुप्ती है। अत: 'धर्मयुद्ध' अथवा 'चित्रकूट-संवाद'की अपेक्षा करना युगधर्म के खिलाफ है । अब विद्वान मुंह-थेथरई ज्यादा करते हैं ठोस बातें कम । कुछ देर बाद ही दोनों स्वयंभू विद्वान तलवारबाजी पर उतर ही गए। एक से एक करतब दिखने लगे। अगल-बगल के छुटभैये भी छिटक कर गिरे समानों को अपने विद्वानों को संभलकर पकड़ा देते थे। जब दोनों वाकवीर थक जाते थे तो पानी मंगाकर पी लेते थे । अचानक वाकयुद्ध अपने-अपने गुरु घंटालों की ओर बढ़ गया। फिर क्या था? दोनों कसीदे पढ़ने लगे-'कंदुक इव ब्रह्मांड उठाऊँ'। अचानक एक छुटभैये ने अपनी निकटता दिखाने के चक्कर में एक 'फुदकती चिड़िया' का नाम उछालते हुए चिंचियाया – अरे सर ! उनके टक्कर का तो कोई है ही नहीं । गाँव के प्राथमिक विद्यालय से पढ़कर आज वे शिक्षा जगत के उच्चतम स्तर पर सुशोभित हो रहे हैं। कागभुशुंडि से रहा नहीं गया। उन्होने कहा- अरे महाराज कुछ-पढ़ लिख लो तब बोला करो। जिसको आप बता रहे हो उसे मैं भी जानता हूँ। एक नंबर का ..... है। इतना सुनना था कि उल्लू का चेहरा तमतमा गया । उसने कहा – देखिये सर! मैं जिसको पसंद करता हूँ अथवा मान-सम्मान देता हूँ उसके खिलाफ कोई कुछ कहता है तो मैं उसकी'जबान' खींच लेता हूँ। काक कहाँ चूकने वाले थे। उनकी भी पढ़ाई अयोध्या के हुनरमंद पाठशाला में हुई थी। उन्होने बड़ी विनम्रतापूर्वक कहा- डाक साहब ! मैं अजानुबाहु नहीं हूँ । अत: मैं यहाँ पर आपसे एक कदम पीछे हूँ। उल्लू ने तुरन्त कहा–अरे भाई! वह तो त्रेता काल से ही है । काक ने कहा–पहले मेरी पूरी बात तो सुनिए। दरअसल एक कदम आपसे पीछे रहकर मेरी अपनी पहुँच गर्दन तक ही है। अत: मैं तो'उसकी' गर्दन ही दबोच देता हूँ। ज्ञान की बात होते-2 वाक-नाव अचानक 'चकोह' में फंसती दिखी । राजा गाधि के नगरी का यह कदर्य-मल्ल 'रहा प्रथम बल मम तनु नाहीं' कहकर अपनी गर्दन बचाने के लिए वहाँ से तुरंत निकल लेता है ।

बकरे चहक उठे

अभिषेक त्रिपाठी

बूचरखाने की तरफ से मैं बढ़ा चला जा रहा था। एक बकरा बड़ी बेदर्दी के साथ काटा जा रहा था। पहले वह जोर-जोर से मिमियाया; लेकिन धीरे-धीरे उसकी आवाज़ अनंत में दफ़न हो गयी।

मैं बहुधा बुचरखाने की ओर जाने से बचता रहा हूँ;परंतु आज दुर्घटनावश पहुँच गया, और आँखें नम हो गयीं।

वहाँ बँधा एक दूसरा बकरा शायद मुझे आब्जर्व कर रहा था। झट वह मेरे पास आया और बोल पड़ा- 'क्यों भई किसी और लोक के हो क्या?'

मैंने कहा- 'नहीं तो, यहीं का हूँ... क्यों, इतना चौंक क्यों रहे हो?'

बकरा- 'लगता तो नहीं है। यहाँ के लोग तो ऐसे नहीं होते। हम पशुओं की हत्या पर किसी इंसान की आँखों का भर आना....कुछ अजीब लग रहा है! मैं कोई सपना तो नहीं देख रहा!'

बकरा खुद को चिकोटी काटता है।

बकरा- 'हे भगवान! भरोसा नहीं हो रहा। हमारी जघन्य हत्या से किसी मनुष्य की आँख में आँसू! ना, ना! ऐसा कदापि नहीं हो सकता!'

बकरा मुझे ऊपर से लेकर नीचे तक ध्यान से देखता है। फिर किसी ग़हरी सोंच में डूब जाता है।

"नहीं नहीं ऐसा नहीं हो सकता। कदापि नहीं। इन मनुष्यो को तो इस दुनिया की बड़ी चिंता है। वे हमें इसलिए खाते हैं कि यदि वे हमें नहीं खाएंगे तो हमारी संख्या बढ़ जाएगी, हम धरा पर असंतुलन पैंदा कर देंगे, हमारी वजह से खाद्य संकट उत्पन्न हो जाएगा। हमारे गोश्त से इन्हें ऊर्जा मिलती है, बकैती करने का जोश मिलता है, दुनिया भर के वाद पर बतियाने, समाज परिवर्तन करने का जज्बा मिलता है। फिर हमारी हत्या से इन्हें क्यों तकलीफ?

जरूर कोई स्वार्थ है। नहीं तो मनुष्य इतना कमज़ोर नहीं कि हम जैसे निरीह मूक प्राणी उसकी भावनाओं को झकझोंर दें। इनकी भावनाओं को तो वे झकझोरेंगे जो फेसबुक जैसी सोशल मीडिया पर अपना दर्द बयान कर दें, अपने नाम पर कैण्डल लाईट मार्च निकलवा दें..!"

बकरा फिर सोंच में डूब जाता है।

"कहीं यह कोई नेता तो नहीं?" अचानक उसके दिमाग में आता है...!

बकरा तुरंत पास बंधे दूसरे बकरे से पूछता है- 'भाई, सरकार ने हम पशुओं को वोट देने का अधिकार तो नहीं न दे दिया?'

दूसरा बकरा- 'पता नहीं।'

पहला बकरा- 'नहीं मुझे तो ऐसा ही लग रहा है। जरूर हम भी भारत देश के वोटर हो गए हैं, और यह व्यक्ति जरूर किसी पार्टी का नेता होगा। हाँ तभी यह हमें कटता हुआ देख कर सहानुभूति दिखा रहा है। यह भारत देश है। यहाँ वोट के नाम पर कुछ भी हो सकता है।'

दूसरा बकरा- 'तब तो हम जरूर कटने से बच जाएंगे। सरकार अब जरूर पशुओं के काटे जाने पर प्रतिबंध लगा देगी। उसके होशियार ब्यूरोक्रेट जरूर यह साबित कर देंगे कि यदि मनुष्य हमें नहीं खाएगा तब भी जीवन सुरक्षित रह सकता है। अब हमें काटे जाने को लेकर किसी की भी बकैती नहीं चलेगी...। तंत्र जरूर लोगों की संवेदना को झकझोरने में कामयाब हो जाएगा। अब हमारी हत्याओं पर भी परिचर्चाएँ होंगी...।'

उस बकरे की बात सुनकर मौजूद सारे बकरे खुश हो जाते हैं। वे एक-दूसरे को गले लगाते हैं और नाचने-गाने लगते हैं।

एक बकरा किनारे खड़ा यह सब देखता है। वह आकाश की ओर ताकते हुए बोल पड़ता है- 'हे भगवान! काश भारत में रोज़-रोज़ चुनाव (इलेक्शन) हो!'

संपर्क

सच्चिदानंद सिन्हा	गाँव व पोस्ट - मनिका, मुजफ्फरपुर - 843119 (बिहार)
चित्तरंजन मिश्र	प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा chittranjanmishra@gmail.com
बलराम शुक्ल	दिल्ली विश्वविद्यालय, shuklabalram82@gmail.com
अरुणेश नीरन	अतिथि लेखक, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, neeranarunesh48@gmail.com
राकेश मिश्र	अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग, mishrarakeshkumar2007@gmail.com
गिरीश्वर मिश्र	कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि.वि., वर्धा, misragirishwar@gmail.com
शोभा पालीवाल	आंतरिक गुणवत्ता आश्वासन प्रकोष्ठ, shobhapaliwal95@gmail.com
रामानुज अस्थाना	हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, asthanajee@gmail.com
डी. एन. प्रसाद	अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग, dnpsayal@yahoo.co.in
सपना सिंह	क्षेत्रीय केंद्र इलाहाबाद, sonsri31@gmail.com
जुगल चौधरी	हिन्दी साहित्य विभाग, jugalc@gmail.com
अविनाश त्रिपाठी 'अंकुर'	संचार एवं मीडिया अध्ययन केंद्र, mailavinashtripathi@gmail.com
रजनीश कुमार अम्बेडकर	डॉ. बाबासाहब अम्बेडकर दलित एवं जनजाति अध्ययन केंद्र, rajneesh228@gmail.com
प्रदीप त्रिपाठी	हिन्दी एवं तुलनात्मक साहित्य विभाग, tripathiexpress@gmail.com
हरप्रीत कौर	अनुवाद एवं निर्वचन विद्यापीठ, harpreetdhaliwal09@gmail.com
राकेश श्रीमाल	वर्धा संस्कार, devyani.shreemal@gmail.com
माधुरी मिश्र	महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, mgmisra@rediffmail.com
मनोज कुमार राय	अहिंसा एवं शांति अध्ययन विभाग, chinmay69@gmail.com
अभिषेक त्रिपाठी	नाट्यकला एवं फिल्म अध्ययन विभाग, pingaakshaa@gmail.com

shambhujoshi@gmail.com

gcpandey@gmail.com

यह प्रयास

हमें हार्दिक प्रसन्नता है कि आज निमित्त का दूसरा अंक आपके सामने प्रस्तुत है। प्रस्तुत अंक में अध्यापकों, कर्मियों, विद्यार्थियों सहित पूर्व विद्यार्थियों ने बड़ी रुचि से निमित्त के इस अंक को साकार किया उनके सहयोग के लिए...

विश्वविद्यालय प्रशासन ने निरंतर रुचि ली और हमें प्रोत्साहन दिया उनके प्रति हार्दिक आभार।

सृजन रस की यह धारा सतत बहती रहे और हम सब इसका आनंद लेते रहे हैं इस आकांक्षा के साथ फिर मिलेंगे।

शंभू जोशी, गिरीश चंद्र पाण्डेय